ग्रामीण पाठकों के लिए

राजा राममोहन राय

विजित कुमार दत्त

अनुवाद

सूर्यनाथ सिंह

चित्रांकन

दीपक मैत्रा

एकः सूते सकलम्

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

ISBN 81-237-3126-4

पहला संस्करण : 2000 (शक 1921)

रु. 10.00

Raja Rammohan Ray (*Hindi*)

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, ए-5 ग्रीन पार्क, नई दिल्ली-110016 द्वारा प्रकाशित

1

सन् 1809। पहली जनवरी, भागलपुर। दिन ढल रहा था। शाम के चार बजे थे।

उन दिनों सड़कें पक्की नहीं हुआ करती थीं। उन पर धूल उड़ा करती थी, पानी पड़ जाने से कीचड़ हो जाता था। इसी तरह के एक धूल भरे रास्ते से एक पालकी चली जा रही थी। उन दिनों यातायात के लिए पालकी ही बड़े लोगों की सवारी हुआ करती थी। धूल उड़ रही थी। पालकी धीमी गति से आगे बढ़ी जा रही थी—हइया हो, हइया हो। पालकी के साथ-साथ सेवक भी चल रहे थे। वे भी कहारों के साथ चाल से चाल मिलाए चल रहे थे। पालकी भागलपुर के आसपास आ पहुंची थी। रास्ते में कोई आदमी-जन नहीं था। होता भी किस तरह। रास्ते में निकलते ही तो गोरे साहबों की हुंकार सुनाई पड़ जाती। काला आदमी तो डर के मारे ही कांपता रहता। सलाम ठोंकता, लेकिन, उस पर भी रिहाई थोड़े न मिल पाती। शरीर पर एक दो कोड़े तो खाने ही पड़ जाते। अगर किसी को कोई बहुत जरूरी काम होता तो वह रास्ता छोड़ कर खेतों से होकर जाता।

मुगल शासन के समय से ही यह परंपरा चली आ रही थी। बादशाह ने अपनी प्रजा को हुक्म दिया था कि जब उनके कर्मचारी रास्ते से होकर जाएं तो उन्हें कोर्निश करें। लेकिन जब प्रजा राज-कर्मचारी को कोर्निश करती तो वह उन्हें कभी देखता तो कभी नहीं

देखता। वही परंपरा ईस्ट इंडिया कंपनी के जमाने में भी चल रही थी।

इस शासन में अमलों की हालत तो और भी भयानक रूप ले चुकी थी। अंग्रेज खुद को सभ्य देश के आदमी समझते थे और भारत को असभ्य देश मानते हुए यहां के लोगों को आदमी मानते ही नहीं थे।



मुगल अमले के सामने से कोई आदमी छाता लगा कर, घोड़े पर चढ़कर या पालकी पर चढ़कर नहीं जा सकता था। छाता बंद करना पड़ता था, घोड़े से नीचे उतरना पड़ता था, पालकी से नीचे उतर कर पैदल जाना पड़ता था।

जिस समय उस रास्ते से यह पालकी चली जा रही थी उसी समय कलकत्ते का कलक्टर सर फ्रेड्रिक हेमिल्टन एक ईंट के पजावे पर खड़ा था। हेमिल्टन की मर्यादा आहत हो गई। उसके सामने से एक चपरासी की हैसियत जैसा आदमी इस तरह से चला जाएगा? इतनी हिम्मत! इतना घमंड! उसे देख, पालकी सवार उतरा नहीं। हेमिल्टन गुस्से से आग बबूला हो उठा। उस ने घोड़ा दौड़ाकर पालकी रुकवाई।

सवार भीतर से नीचे उतर कर आया। सलीके से नमस्कार करने के बाद कारण जानने की चेष्टा की। साहब का गुस्सा देखकर सवार बात जानने की जितनी कोशिश करता उतना ही हेमिल्टन का गुस्सा बढ़ता जाता। सवार ने कहा कि उनके सेवकों ने साहब को शायद देखा नहीं। उनकी भी तो अपनी कुछ मर्यादाएं थीं। वे रायरायान वंश के ब्राह्मण थे। उन की देशी-विदेशी अनेक सभ्रांत लोगों से दोस्ती थी। उन्होंने बात को अधिक बढ़ाना उचित नहीं समझा। वे साहब की उपेक्षा कर पालकी पर चढ़े और चले आए भागलपुर। लेकिन इस घटना को उन्होंने हल्के ढंग से नहीं लिया। इस का प्रतिवाद करने की ठानी। नहीं तो इस तरह से सहन करते जाने से अत्याचार बढ़ता जाएगा। इन्हें सबक तो सिखाना ही होगा।

कुछ दिनों बाद उन्होंने पूरी घटना का विवरण देते हुए लार्ड मिंटो के पास शिकायत दर्ज करा दी। किंतु एक मुगल अमले द्वारा भेजे गए पत्र को उस ने खारिज कर दिया और हेमिल्टन को बुला कर

आइंदा ऐसा असभ्य व्यवहार न करने की चेतावनी दी।

लेकिन उस व्यक्ति ने एक व्यक्ति के साथ किए जाने वाले इस तरह के असभ्य व्यवहार के ख़िलाफ़ कानून बनवाने की प्रतिज्ञा ली। और बाद में वे इस कानून को संशोधित करवाकर नया कानून बनवाने में सफल भी हुए। यह व्यक्ति थे 'राजा राममोहन राय'।

2

नवाबी शासन।

हुगली जिले का राधानगर नाम का गांव था। इस गांव का काफी नाम था। यहीं पर 'रायरायान' वंश के लोग रहते थे। नवाब के यहां इन लोगों की काफी इज्जत थी। रायरायान लोगों के पास धन-दौलत और जमीन काफी मात्रा में थी।

राममोहन का ताल्लुक इसी वंश से था। इनका जन्म 1774 में हुआ था। कुछ लोगों का कहना है कि राममोहन का जन्म 1772 ई. में हुआ था। वे रमाकांत राय के दूसरे नंबर के पुत्र थे। रमाकांत नवाब के यहां कर्मचारी थे। धन-धान्य तथा इज्जत प्रतिष्ठा की दृष्टि से वे एक प्रसिद्ध व्यक्ति थे। माता का नाम तारिणी देवी था। रमाकांत की तीन पत्नियों में से वे दूसरे नंबर की थीं। यह महिला बहुत तेजस्विनी, प्रखर बुद्धि की, समझदार और निष्ठावाली थीं। राममोहन के जीवन पर मां का गहरा प्रभाव पड़ा था।

राममोहन की आरंभिक शिक्षा राधानगर में ही हुई थी। नवाब के दरबार में नौकरी के लिए अरबी-फारसी की पढ़ाई की जरूरत पड़ती थी इसलिए राममोहन को पढ़ने के लिए पटना भेज दिया गया। राममोहन ने अरबी-फारसी की शिक्षा औपचारिक रूप से ग्रहण

नहीं की, बल्कि वे इस में रम गए। इन दोनों भाषाओं पर उन का ऐसा अधिकार हो गया कि इन भाषाओं में बात करने, आलोचना करने और विचार-विमर्श करने में उन्हें किसी प्रकार की कोई परेशानी नहीं होती थी। वे कठिन से कठिन बात को भी अरबी-फारसी में बड़ी सहजता से बोल लेते थे। पटना में वे कितने दिन रहे, उसकी कोई ठीक-ठीक जानकारी नहीं मिलती। उसके बाद राममोहन को आगे की पढ़ाई के लिए काशी जाना पड़ा। यहां भी वे कितने दिन रहे, इसकी भी ठीक जानकारी नहीं मिलती। ऐडम साहब (राममोहन के एक मित्र) का कहना है कि राममोहन दस साल तक काशी में रहे। काशी संस्कृत चर्चा के लिए हमेशा से विख्यात रहा है। यहां उन्होंने काफी गहन अध्ययन किया। वेदवेदांत मीमांसा, स्मृतिशास्त्र, काव्यशास्त्र उनकी जिह्वा पर उतर आए थे। इन दोनों भाषाओं के विद्वान राममोहन समाज और राजदरबार में एक सम्मानित व्यक्ति के रूप में जानें जाने लगे, उनसे काफी उम्मीद की जाने लगी।

पढ़ाई लिखाई के दौरान ही राममोहन को धर्म के प्रति जिज्ञासा पैदा हो गई थी। तथा हिंदू और मुसलमान जिस धर्म को लेकर अपनी धारणा बनाए हुए थे, उस पर उन्हें संदेह पैदा हुआ। सोलह साल की अवस्था में उन्होंने एक प्रबंध की रचना भी की थी। 1804 ई. में उन्होंने एकेश्वरवाद को ध्यान में रखते हुए 'तुहफात ए मुजाहिदीन' नामक एक ग्रंथ की रचना की।

राममोहन के जीवन के शुरू के 14 वर्ष घर में बीते थे। इसी समय उनकी मुलाकात नंदकुमार विद्यालंकार से हुई। नंदकुमार संस्कृत के अध्यापक थे और तंत्रसाधना भी करते थे। तब उनका नाम हुआ करता था—हरिहरानंद तीर्थस्वामी कुलावधूत। राममोहन तो बैठे रहने वाले व्यक्ति नहीं थे। उन्होंने नंदकुमार से संस्कृत की

शिक्षा ग्रहण की, और नंदकुमार को तंत्रसाधना का नशा था, जिसका परिणाम यह हुआ कि राममोहन का झुकाव भी तंत्रसाधना की तरफ हो गया। उन्होंने तंत्रसाधना की बुनियादी बातें सीख लीं।

उसके बाद वे तिब्बत चले गए। वहां उन के भीतर एक विचित्र किस्म की प्रतिबद्धता पैदा हो गई। रास्ते का कष्ट असह्य था, किंतु वहां पर उन्होंने देखा कि लोग लामाओं को ईश्वर मान कर उनकी पूजा करते हैं, यह देख कर उनका मन विद्रोह कर उठा। यह कौन सी बात है! ईश्वर तो एक है। यहां तो सारे लामाओं ने ईश्वर की जगह ले ली है। राममोहन ने विरोध किया।

जैसे मधुमक्खी के छत्ते पर पत्थर मार दिया हो। चारों तरफ से राममोहन पर आक्रमण होने लगे। उन्हें भाग कर बचने का कोई रास्ता न सूझा। एक तिब्बती महिला ने उन्हें मौत के पंजे से छुड़ाया। उसने ही राममोहन के लिए भारत वापस आने का प्रबंध किया। राममोहन जीवन भर उस तिब्बती महिला की बातों को नहीं भूल पाए। बाद में चलकर राममोहन ने जो स्त्रियों के लिए इतना काम किया उसकी प्रेरणा उन्हें उस तिब्बती महिला से ही मिली थी।

राममोहन राधानगर का घर छोड़कर पिता के साथ लांगूलपाड़ा चले आए। यहां पर उनके पिता रमाकांत ने एक नया घर बनवाया था। यह 1791 की बात है। सब के साथ उन दिनों राममोहन भी पिता के साथ-साथ संपत्ति का हिसाब-किताब देखा करते थे। पता नहीं क्या हुआ कि रमाकांत राय ने एक वसीयत लिखकर अपनी पूरी जायदाद को बेटों में बांट दिया। राममोहन को हिस्से में घर का कुछ हिस्सा और अस्सी बीघे के आसपास जमीन मिली। इसके अतिरिक्त उसे जोड़ासांकों का मकान भी मिला।

इसके बाद रमाकांत नौकरी करने बर्द्धमान चले गए। राममोहन मां के साथ लांगूलपाड़ा में ही रहने लगे। बीच-बीच में वे पिता से मिलने के लिए बर्द्धमान चले जाया करते थे। कामकाज के सिलसिले में वे कई बार कलकत्ता भी जा चुके थे। भुरसू में भी उनकी जमींदारी थी। इसलिए उन्हें वहां भी जाना पड़ता था। राममोहन अपनी जमींदारी का क्षेत्र बढ़ाने के लिए वहां बार बार आने-जाने लगे। उन्होंने गोविंदपुर और रामेश्वरपुरम के दो तालुका खरीद लिए। इन दोनों तालुकों से सालाना पांच-छह हजार की आमदनी हो जाती थी।

इसके बाद राय परिवार के ऊपर भयानक संकट के बादल घिर आए। रमाकांत कर्ज में डूब गए और इस चक्कर में उन्हें जेल भी जाना पड़ा। भाई जगमोहन को भी कर्ज न चुका पाने के चक्कर में जेल जाना पड़ा। लेकिन राममोहन ने अपनी प्रखर बुद्धि के बल पर उन्हें इस संकट से उबार लिया।

कुछ समय बाद ही वे कलकत्ता घूमने आए और रंगपुर में दीवान की नौकरी के लिए एक दरख़्वास्त दे दी। इस अवसर पर उस समय के साहेब सूबा लोगों ने राममोहन को सिफारिशी पत्र भी भेजे। 1801 ई. में राममोहन का कलकत्ता के जॉन डिगबी के साथ परिचय हुआ। जॉन डिगबी एक अंग्रेज सिविलियन अफसर थे। राममोहन की पढ़ाई-लिखाई तथा आधुनिक सोच का उन पर गहरा प्रभाव पड़ा।

कलकत्ता आकर राममोहन ने रोजगार की तरफ अपना ध्यान लगाया। कुछ दिन तक उडफोर्ड साहेब के दीवान पद पर काम किया।

1803 में पिता रमाकांत राय का देहांत हो गया। रमाकांत का दाहकर्म कौन करे, इस बात को लेकर विवाद पैदा हो गया। घर में विवाद छिड़ गया, राममोहन ने कलकत्ता में श्राद्ध किया, तो तारिनी

देवी ने लांगूलपाड़ा में तथा भाई जगमोहन ने मेदिनीपुर जेल में श्राद्ध किया। मृतक के प्रति श्रद्धा जताने की हमारी यह कैसी विचित्र परंपरा है! तब तक राममोहन काफी संपन्न हो चुके थे। यह तो सहज ही समझ में आने वाली बात थी। पैतृक संपत्ति, कागज की खरीद फरोख्त से भी उन्हें आय होती थी। यह आमदनी काफी थी।

1805 से लेकर 1814 तक राममोहन डिगबी के साथ ही रहे। उन्होंने डिगबी साहेब के सोस्तादार और दीवान पदों पर काम किया। डिगबी के साथ-साथ वे रामगढ़, जशोहर, भागलपुर, रंगपुर आदि स्थानों में रहे। ऐसा नहीं है कि राममोहन डिगबी के यहां नौकरी तक ही रहे बल्कि उन की नौकरी चली जाने के बाद भी उन्हें डिगबी ने नहीं छोड़ा। काफी समय तक वे डिगबी के मुंशी बन कर रहे। दोनों के बीच काफी गहरी दोस्ती थी। लोग राममोहन को डिगबी का दीवान कहकर पुकारते थे।

यहां राममोहन की भूटान यात्रा के बारे में बताना आवश्यक जान पड़ रहा है, जलपाईगुड़ी के पास भूटान की सीमा पर भराधार की सीमा को लेकर कुछ झगड़ा फसाद चल रहा था। राममोहन डिगबी के साथ सीमा पर उठ खड़े हुए विवाद को निपटाने के लिए कूचविहार गए। किंतु डिगबी वहां शांति कायम न कर सके। भूटान नरेश ने विवाद समाप्त करने की इच्छा प्रकट की। इस बार सेरेस्ता के कर्मचारी कृष्णकांत के साथ राममोहन दूत के रूप में भूटान गए। भूटान का रास्ता काफी दुर्गम था। और दुर्गम रास्तों से जाने का नशा तो राममोहन को था ही, भ्रमण और सिर्फ भ्रमण। इसी नशे के चलते वे एक विश्व पथिक के रूप में विख्यात हुए। गोपाल पाड़ा से विजनी, विजनी से सिउली और चेरंग। उसी रास्ते से पांचूमाचू घाटी से होते हुए भूटान की राजधानी पहुंचे। किंतु राममोहन दो

महीने तक वहीं पड़े रहे। राजा के साथ भेंट नहीं हो पाई। बाद में राजा से भेंट भी हुई और वे अपने दूत के कार्य में सफल भी हुए। वे वहां जो दो महीने तक रुके रहे उस में वे भूटान के जनजीवन तथा संस्कृति से काफी परिचित हो गए।

राममोहन की जायदाद और नौकरी-चाकरी के बारे में यहां जो बातें कही गई हैं कि अधिक पैसा न होने के कारण राममोहन को कलकत्ता में बसने का मन बनाने में काफी समय लग गया। दूसरी ओर हम देखते हैं कि नौकरी-चाकरी के सिलसिले में अंग्रेज सिविलियन तथा कर्मचारियों के साथ उनका संपर्क बढ़ा। उन्होंने अंग्रेजी अदब-कायदा सीख लिया, सुख स्वाछंद्य, विश्व राजनीति तथा चिंतन से वे काफी परिचित हो गए। उन्हें देश के कायदे-कानून की भी काफी जानकारी हो गई। इस तरह अंग्रेजों के संपर्क में होने के कारण उनके दोस्तों का दायरा भी काफी बड़ा होता गया। कोई भी गण्यमान्य अंग्रेज कलकत्ता आता तो बिना राममोहन राय से मिले नहीं जाता। कुछ विदेशी तो ऐसा सोचते थे कि राममोहन ही भारत के असली आविष्कर्ता हैं।

राममोहन का स्वास्थ्य काफी अच्छा था। वे प्रतिदिन लगभग अठारह घंटे तक मेहनत करके काम कर सकते थे। खाने-पीने के काफी शौकीन थे। वे बारह किलो दूध और चार किलो मांस एक बार में खा सकते थे। पचास डाब (कच्चा नारियल) पीने के बाद तो उन की प्यास बुझती थी। चालीस आम का नाश्ता करते थे। नृत्य, संगीत और समारोह उन्हें पसंद थे। कई विदेशियों ने भी उन के साथ कलकत्ता में नृत्यसंगीत का आनंद लिया था। फिट्स क्लारेंस (आर्ल आफ मानचेस्टर), फ्रांसीसी वैज्ञानिक विक्टर जाकम तथा अंग्रेज महिला फानी पार्कर राममोहन के पास आ चुके थे। फानी

पार्कर राममोहन के घर एक उत्सव में उपस्थित हुई थीं।

शाम को पार्टी थी। उस पार्टी में कुछ अभिजात्य बंगाली भी मौजूद थे। घर के सामने का हिस्सा रोशनी से सजाया गया था और वहां चमत्कारबाजी की व्यवस्था की गई थी। हर कमरे में नाचनेवालियां नाच गा रही थीं। पार्कर को वह गीत काफी अच्छा लगा। इन नाचनेवालियों में उस समय की एक मशहूर बाईजी भी थीं।

राममोहन को कुछ कुछ मुसलमानी अदब-कायदा पसंद था। इसीलिए वे जोब्बा चापकान पहनते थे, और यही पोशाक उनकी पहचान बन गई थी। इस तरह कुछ लोग तो ऐसा भी मानने लगे थे कि राममोहन का मुसलमानों के साथ खाना-पीना भी है। क्योंकि उस समय ऐसा ठीक नहीं समझा जाता था। किंतु राममोहन इस बात को स्वीकार नहीं कर सकते थे। वे अपने मुसलमान दोस्तों से उनका दिया सब कुछ प्यार से ग्रहण करते थे। वे कहा करते थे कि हिंदू और मुसलमान दोनों ही इस देश की संतान हैं और अपने देश के प्रति दोनों के ही मन में समान आदर की भावना है।

राममोहन के पैतृक घर में विष्णु की प्रतिमा थी। इनके परिवार के लोग परम वैष्णव भक्त थे। माता तारिणी देवी अकेली ही श्री क्षेत्र चली गई थीं। 1822 में वैष्णव तीर्थ स्थान पर ही तारिणी देवी का देहांत हो गया था। किंतु राममोहन को इस वैष्णवता पर विश्वास नहीं था। उन का मंत्र था-ऊं तत् सत्। मरने के वक्त भी उन की जबान पर यही मंत्र था-ऊं तत्-सत्।

3

अब राममोहन की पढ़ाई-लिखाई के बारे में भी थोड़ी सी बात हो जानी चाहिए। इससे पहले यह जान लेना बहुत जरूरी है कि गांवों में किस तरह की पढ़ाई-लिखाई हुआ करती थी। मुहल्ले के पंडितजी के घर पर या मकतब के मदरसे में बच्चे पढ़ने जाया करते थे। वहां की पढ़ाई बहुत एकरस और उबाऊ हुआ करती थी। अ, आ, क, ख, कुछ नाम और कुछ हिसाब-किताब करने लायक गिनती सिखा दी जाती थी। बस उसके बाद सारा जीवन दूसरों की कही हुई बातों और समाज के बनाए निर्देशों को सुनना और पालन करना पड़ता था। काज़ी अथवा पंडितजी का विचार ईश्वर का बनाया हुआ नियम होता था। और लोग इससे आगे बढ़ने की कोशिश करते, उन्हें पढ़ाया जाता व्याकरण और न्याय स्मृति शास्त्र। और दूसरी तरफ जो मौलवी साहब पढ़ाते थे, वहां पढ़ाने का तरीका इसी तरह का होता था। उस समय पंडित और मौलवी ही हर तरह के दंडमुंड के कर्ता हुआ करते थे।

राममोहन की पढ़ाई भी पंडितजी की पाठशाला से ही शुरू हुई थी। लेकिन वे काफी मन लगा कर पढ़ने वाले छात्र थे। हर चीज को वे अलग-अलग कर जानने-पहचानने की जिज्ञासा रखते थे। जैसे ही उनके मन का एक संदेह दूर होता वे और आगे पढ़ने की इच्छा करते, और जानने के लिए लालायित हो उठते। उस समय कुछ लोग कामकाज के खयाल से काम चलाऊ अंग्रेजी जरूर पढ़ा करते थे, लेकिन राममोहन ने इस दृष्टि से कभी नहीं पढ़ा। अठारहवीं शताब्दी के आखिरी दौर में जिस ढंग से अंग्रेजी सीखने का प्रचलन था, उससे उन्हें हंसी आती थी।



इसके बाद राममोहन पटना चले गए। क्योंकि पटना उस समय अरबी-फारसी सिखाने की राजधानी हुआ करती थी। वहां जाकर राममोहन अरबी-फारसी के विद्वान हो गए। और इस तरह से

राममोहन ने इस्लाम के मर्म को भी जान लिया। कुरान शरीफ पढ़ कर वे मुग्ध हो गए। उसके बाद से मूर्ति पूजा से उनका विश्वास उठ गया। राममोहन एकेश्वरवादी हो गए। इस संबंध में एक और बात स्मरण करने योग्य है। इस्लाम धर्म को मानने वालों की मूतजिला नामक एक संस्था थी। वे लोग तर्क-वितर्क में विश्वास रखते थे एवं उस पर विचार करते थे। उन दिनों यह काफी बड़ी बात हुआ करती थी कि वे लोग हिंदू-मुसलमान में कोई भेद नहीं मानते थे। राममोहन ने इन लोगों के पास आकर एक उदार धर्म के बारे में महसूस किया। इसमें सब लोगों को आपस में मिलजुल कर रहने की बात की जाती थी। कुछ दिनों बाद उन्होंने सूफी अनुयायियों के बारे में भी जानकारी प्राप्त की और काफी आनंदित हुए। हाफिस और रुमी उन्हें कंठस्थ हो गए थे। अरबी-फारसी बोलने में वे जरा भी नहीं अटकते थे। इस आधार पर क्या हम राममोहन को मौलवी कह सकते हैं? और एक दूसरी बात का जिक्र करना भी यहां मैं मुनासिब समझता हूं। राममोहन के शिष्य देवेंद्रनाथ ठाकुर भी इन अनुयायियों के धर्मप्रचारक गीतों और उपदेशों को पढ़कर काफी प्रभावित हुए थे। और अपना धर्म मत स्थापित करने के लिए काफी उत्साहित हुए थे। और उन्हीं सूफी साधकों में से एक संप्रदाय हमारे बाउल संतों का भी है। देवेंद्रनाथ के पुत्र रवींद्रनाथ के गीतों में मानवतावादी तत्त्वों का समावेश इन्हीं बाउल संतों के गीतों से हुआ था। उनकी सोच में मनुष्य का धर्म एक उदार मंत्र के रूप में उभर कर आया। बाउलों ने कहा है, 'हे साईं हमने तो तुम तक पहुंचने वाले रास्ते को मंदिर और मस्जिदों से ढक दिया है' राममोहन, देवेंद्रनाथ और रवींद्रनाथ ने इसी ढके हुए रास्ते को प्रकाशपुंज की तरफ मोड़ दिया।

उसके बाद राममोहन काशी चले गए। काशी वेद, वेदांत और पुराणों की चर्चा का केंद्र हुआ करता था। मध्यकाल में चैतन्य भी काशी आए थे। काशी में प्रकाशानंद के साथ रहकर विचार-विमर्श करके राममोहन ने समझ लिया कि मनुष्य ही प्रमुख है। मनुष्य को अलग करके ईश्वर का कोई मतलब नहीं बनता। तब तक राममोहन के मन में एकेश्वरवाद के प्रति आस्था पैदा हो चुकी थी और वे मानने लगे थे कि 'एकमेवाद्वितीयम्' उन्होंने भारत के ज्ञान की खान कहे जाने वाले उपनिषदों को पढ़ने के बाद पाया कि मूर्तिपूजा का कोई अर्थ नहीं है। उनके मन में अब तक अगर मूर्तिपूजा के प्रति कुछ आस्था बची भी हुई थी तो वह उपनिषदों को पढ़ने के बाद समाप्त हो गई। उन्होंने इतना ही नहीं पढ़ा बल्कि हिंदू धर्म के सारे धर्मशास्त्रों का अध्ययन कर डाला। षड्दर्शन, धर्मशास्त्र और स्मृतिनिबंधों का भी अध्ययन किया। दूसरी तरफ काफी मेहनत करके रामायण, महाभारत, पुराण तथा तंत्रों का भी काफी अध्ययन किया और ऐसा नहीं है कि उन्होंने सिर्फ ज्ञान के लिए पढ़ा, बल्कि उन्होंने उन्हें पढ़ने के दौरान यह भी सच्चाई जानने की कोशिश की कि मनुष्य के जीवन में अध्यात्म भावना का क्या स्थान है। इस तरह के भेदभाव का कारण क्या है? इतने सारे देवी देवताओं के प्रति लोगों के मन में इतना मोह कैसे पैदा हो गया। ज्ञान तो और अधिक ज्ञान का प्रसार चाहता है। तभी तो द्वंद्व भाव मिट पाता है, अंधकार समाप्त हो जाता है और प्रकाश फूट पड़ता है।

राममोहन के मानिकतला वाले घर में एक दिन एक वृद्ध संन्यासी आए। उस समय वहां आर्नेट साहब भी थे। उनके साथ पूरे दिन विचार-विमर्श चलता रहा। अगले दिन ये शास्त्रविद दिग्विजय के लिए निकल पड़े। बड़े-बड़े पंडितों को अपने विचार से पराजित करते

गए। राममोहन ने बौद्ध धर्म के प्रसिद्ध ग्रंथ 'बज्रसूची' का बंगला अनुवाद करके छपवाया। जैनों के 'कल्पसूत्र' का भी अध्ययन किया।

राममोहन के ज्ञानार्जन की बातें इतनी आसानी से समाप्त होने वाली नहीं हैं, लेकिन भ्रमण के संबंध में राममोहन का उत्तर भारत के साथ जो संबंध जुड़ गया था, उसका प्रमाण 1823 में लिखे उनके 'प्रार्थनापत्र' से मिलता है। उन्होंने लिखा था कि हिंदुओं के दसनामा संप्रदाय के संन्यासी, गुरु नानक का संप्रदाय, कबीर पंथी, दादू और संत साधकों का संप्रदाय, ये सभी एकेश्वरवाद को मानते थे और अगर इन्हें निकाल दिया जाय तो धर्म में बचता क्या है?

4

जब राममोहन की उम्र मात्र सोलह साल की थी तभी उनके मन में यह बात आ गई थी कि देवता अनेक नहीं हो सकते, देवता एक ही है और वह है—ब्रह्म।

यह आसानी से अंदाजा लगाया जा सकता है कि उन दिनों राममोहन के इस विचार से उस समय के लोगों के विचार मेल नहीं खा सकते थे। हिंदू धर्म में तो बहुत सारे देवता हैं। उन्हें निकाल कर बाहर कर दिया जाए और सिर्फ एक ब्रह्म को ही अकेला रहने दिया जाए? इस बात से उनके प्रांत और परिचय के लोग सहमत नहीं हुए। इतना ही नहीं राममोहन के पिताजी भी बेटे से नाराज हो गए। लेकिन इस उम्र में भी राममोहन को अपने विचार पर पूरा भरोसा था। तभी तो उन्होंने काफी सोच-विचार के बाद यह बात कही थी। हालांकि अगर कोई उनकी गलती का अहसास करा देता तो वे काफी खुश भी होते, यह नहीं कि अपने विचार

पर अड़े ही रहते।

सोलह साल की उम्र में उन्होंने जो कुछ लिखा था उसे वे छपवा नहीं पाए। छपवाते भी कैसे? उन दिनों बंगला छापाखाना आज की तरह समृद्ध नहीं था। किंतु और भी अधिक गद्य अध्ययन और चिंतन-मनन के बाद तीस वर्ष की अवस्था में उन्होंने फारसी में एक किताब लिखी और उसे छपवा भी लिया। अब सवाल यह उठता है कि उन्होंने बंगला में न लिखकर फारसी में ही क्यों लिखा? क्योंकि जिन्हें अरबी भाषा नहीं आती, उन तक भी वे फारसी के माध्यम से पहुंच सकते थे। इसी तरह उन्होंने आगे चलकर एक अरबी भाषा में किताब लिखी। लेकिन वह सभी तक नहीं पहुंच सकी। आज जिस तरह सरकारी कर्मचारियों, अमलों के बीच अंग्रेजी भाषा का आदर है उसी तरह उन दिनों फारसी को सम्मान प्राप्त था। राममोहन ने 'तुहफात उल मुआहिदीन' ग्रंथ लिखा।

इस ग्रंथ में राममोहन ने दिखाया है कि कुछ लोग अपने आप धर्मगुरु बनकर बैठ गए हैं और उन्होंने धर्म को मनुष्य के सामने कुछ इस तरह प्रस्तुत किया है जिससे उनका प्रभुत्व बना रह सके। सच पर पर्दा डालकर, मिथ्या का जाल फैलाकर वे मनुष्य को मूर्ख बना रहे हैं। और साधारण आदमी भी उनके चक्कर में फंसकर पत्थर को ही देवता समझने लगा है, पेड़ को ही भगवान समझने लगा है। उनके ख़िलाफ़ बोलने की कोई हिम्मत भी न करे, इसलिए उन्होंने तरह-तरह के दंडविधान बना रखे हैं। राममोहन ने यह भी देखा है कि धर्म की ही तरह भारत की भी यही स्थिति हो गई है। कुछ पंडितों ने लोगों को धर्म की भूलभुलैया में फंसा रखा है और मनमाने ढंग से उन्होंने शास्त्रों की व्याख्याएं की हैं। इसाई पादरी भी इस तरह लोगों को भुलावे में रखते हैं। इसी प्रकार मुस्लिम धर्म

गुरुओं में भी बेवकूफ बनाने की प्रवृत्ति दिखाई देती है।

राममोहन ने काफी जोर देकर कहा था कि ईश्वर ने इस धरती पर कभी कोई दूत या अवतार नहीं भेजा। हमें खुद ही विचार करके सत्य की खोज करनी होगी। वे जीवनपर्यंत सत्य की खोज में लगे रहे। इसके लिए उन्होंने काफी कष्ट भी झेले, लेकिन धैर्य नहीं खोया, उनके शत्रुओं ने उन्हें खूब भला-बुरा भी कहा, लेकिन वे एक सभ्य व्यक्ति ही बने रहे और हाफिज का उपदेश मन में याद करते रहे कि 'तुम्हारा कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता, बस मन में जो भला प्रतीत होता है वही करते जाओ। क्योंकि दूसरों का बुरा करने से बड़ा पाप कुछ भी नहीं है।' इस तरह का व्यवहार राममोहन हर समय करते भी थे।

इस पुस्तक के बारे में उन्होंने कहा भी था, "हालांकि मैं ब्राह्मण परिवार में पैदा हुआ, किंतु मूर्तिपूजा में मुझे कभी विश्वास नहीं रहा। यह सब बातें बोलने के कारण मैं काफी मुसीबत में भी पड़ा।" उन्हें मां-बाप से तिरस्कार मिला। काफी दिनों तक उनके सगे-संबंधी भी उनसे घृणा करते रहे, उनके अपने देश के लोग भी उन्हें पसंद नहीं करते थे।

5

राममोहन का जन्म अठारहवीं शताब्दी के अंत में हुआ था—1774 ई. में। इस समय तक अंग्रेजों ने धीरे-धीरे भारत में अपना शासन शुरू कर लिया था। अंग्रेज पूरे भारत पर अधिकार करने का स्वप्न देखने लगे थे।

अंग्रेजों के संपर्क में आकर धीरे-धीरे भारतीयों की आंखें खुलने

लगी थीं। भारत में विभिन्न जातियां रहती हैं, विभिन्न धर्म हैं। इस देश में ही लोगों का एक ऐसा भी वर्ग था, जो इस भेदभाव को नहीं मानता था। वे तीर्थस्थानों पर निकल पड़े थे। वे लोगों से खुले मन से मिलते। वे हिंदू और मुसलमान में कोई भेद नहीं मानते थे। हिंदू धर्म के नाम पर जो छत्तीस वर्णों का बटवारा किया गया था, वे उस पाखंड को बर्दाश्त नहीं कर पाते थे। कबीर, दादू, नानक, चैतन्य आदि बार-बार यही बात बोलते थे कि मनुष्य-मनुष्य के बीच कोई भेद नहीं है। दरअसल उन्होंने भी यह कोई नई बात नहीं कही थी, बल्कि भारत का तो सदा से ही यही मूलमंत्र रहा है कि एक होकर चलेंगे, एक स्वर में बोलेंगे और सबके मन को एक समझेंगे। दादू ने भी यही बात कही थी, 'मैं दो को नहीं जानता, मेरा रास्ता एक ही है, कबीर ने तो कहा था कि मैं भारत पथिक हूं। अर्थात भारत में तो एक ही रास्ता है और उसी रास्ते पर सभी एक साथ चलते हैं, हम एक हैं। रज्जब ने कहा था, 'गुरु के पास तो जाकर जैसे हिंदू और मुसलमान एक हो जाते हैं।' भेदभाव को भुलाकर एक होकर चलने की बात ही इन पथिकों ने स्वीकार की थी। राममोहन उस समय में उसी एक राह के राही थे। हम इसे ही 'आधुनिक काल' कहते हैं।

हम यह भी देखते हैं कि इस विचारधारा को मानने वाले लोगों ने भारत के कोने-कोने तक जाकर धर्म की आलोचना की। और इतना ही नहीं, देश के बाहर अपने विचारों के प्रचार के लिए गए। देवेंद्रनाथ, केशवचंद्र, शिवनाथ शास्त्री, विवेकानंद, दयानंद सरस्वती, रवींद्रनाथ, महात्मा गांधी अनेक ऐसे कई नाम हैं।

राममोहन को तो घूमने का नशा सा था। पढ़ाई और धर्म के संबंध में विभिन्न प्रश्नों के उत्तर जानने के लिए, नौकरी के सिलसिले

में, व्यवसाय के सिलसिले में राममोहन ने काफी छोटी उम्र से ही भारत के विभिन्न स्थानों का भ्रमण शुरू कर दिया था। उन्होंने अपने 'तुहफात उलमुआहिदीन' पुस्तक में यह बात स्वीकार की है कि उन्होंने भारत के दूर दूरांत स्थानों की यात्राएं की हैं। इतना ही नहीं पहाड़ों पर भी वे गए। पटना, काशी और उत्तर भारत से होते हुए भूटान भी गए। कुछ समय तक रंगपुर में रहे। कलकत्ता में तो उन्होंने अपना कर्मयज्ञ ही शुरू किया था। सोचकर ताज्जुब होता है कि लांगूलपाड़ा-राधानगर गांव का एक बच्चा केवल मनुष्य का साथ पाने के लिए पूरे भारत की यात्रा कर आया।

इसके बाद उनके मन में यूरोप की यात्रा की इच्छा जागी। वे वहां का आचार-व्यवहार, कायदा-कानून और धर्म को जानने-समझने के लिए यूरोप की यात्रा पर जाना चाहते थे। राममोहन के समय में कालापानी पार करके यूरोप की यात्रा करना इतना आसान नहीं था। राममोहन की यूरोप यात्रा के समय जो बावर्ची उनके साथ गया था वह मुसलमान था। इतना कुछ होने पर भला समाज के लोग कैसे नहीं उन्हें जाति निकाला दे देते। लेकिन राममोहन ने किसी की तरफ टेढ़ी निगाह करके नहीं देखा। विद्यासागर को भी लंदन जाने की इच्छा हुई थी, तब उनकी इच्छा थी कि वे वहां जाकर महारानी विक्टोरिया से मिलें और पूछें कि एक महिला होकर भी वे भारत में विधवाओं के दुःख कष्ट को किस तरह से सहन कर पा रही हैं। राममोहन भी तो सतीदाह में की जाने वाली नारी हत्या का विरोध करने के लिए ही यूरोप गए थे और उन्होनें देश-विदेश में घूम-घूम कर एक ही बात कही थी कि 'आदमी आदमी में कोई फर्क नहीं होता।' उन्होंने दुनिया के सभी लोगों में एकता के मंत्र का प्रचार किया था।

6

जब वे रंगपुर में डिगबी के दीवान थे तब भी वे अपने कुछ दोस्तों के साथ बैठकर देश की विभिन्न समस्याओं पर विचार-विमर्श किया करते थे। शायद उन्होंने देश की पुकार सुन ली थी। उन्होंने सरकारी नौकरी नहीं की। वे 1814 में कलकत्ता आ गए। उन्होंने पहले ही बड़ा सा मकान खरीद लिया था। उन्होंने मानिकतला का घर छोड़ दिया। उन्होंने इस गूढ़ अर्थ को समझ लिया था कि देशभक्ति के लिए कुछ और ही तरह का मनुष्य चाहिए। उन्होंने देखा कि मिशनरियां मिलजुल कर काम कर रही हैं। उन्होंने अपनी समितियां बना रखी हैं। इस तरह राममोहन ने 1815 में 'आत्मीय सभा' नाम से एक समिति का गठन किया। इस समिति की बैठकों में बृंदावन मिश्र, ब्रजमोहन मजूमदार, नीलरतन हालदार जैसे उस समय के आधुनिक विचारधारा से अनुप्राणित प्रतिष्ठित लोग आया करते थे।

'आत्मीय सभा'? हां, राममोहन अपने दोस्तों को आत्मीय कह कर ही संबोधित करते थे। इस सभा के सभी लोग बड़े खुले मन के लोग थे। सभा में धर्म, शिक्षा, समाज सभ्यता को लेकर काफी तर्क-वितर्क होते। अगर कोई प्रश्न पूछता तो उसका उत्तर देने की भी व्यवस्था थी। कुछ दिनों में 'आत्मीय सभा' की चर्चा पूरे कलकत्ता में होने लगी। ये सभी युवा, चंचल, जी-जान से काम करने वाले लोग थे। इस तरह यह आसानी से समझा जा सकता है कि समाज के पुरातनपंथी लोगों को इस सभा से कितनी कठिनाई महसूस हुई होगी। अब तक ये लोग बहुत निश्चिंत थे। ढोल, कीर्तन, दुर्गापूजन, नंदोत्सव तीर्थ यात्रा, व्रत रखना आदि को ही धर्म माना जाता था। इस सब से लोगों के सारे पाप धुल जाते थे। और गंगास्नान तथा

शिवरात्रि के दिन भांग खाने से पाप से मुक्ति मिल जाती थी। नए-नए जमींदार अपने बेटों को हाथी पर बिठाकर पढ़ने के लिए साहबों के स्कूल में भेजते थे। वे बेटे वहां पढ़ते-लिखते भी थे या नहीं, मालूम नहीं, लेकिन बेपनाह पैसा पाकर विलल्लापन जरूर सीख जाते थे। यही सब लड़के उन दिनों के साहब हुआ करते थे।

'आत्मीय सभा' इसके विरोध में आगे आई।

पहले राममोहन ने अरबी-फारसी में लिखा, फिर बंगला भाषा में वेदांत का अनुवाद किया। अपनी किताब में राममोहन ने वेदांत को सबसे श्रेष्ठ और सम्मानित पुस्तक के रूप में उल्लेख किया है। इसमें भी उन्होंने लिखा है कि ब्रह्म ही एक मात्र उनका पूज्य है। जब 1815 में वह पुस्तक प्रकाशित हुई तब कलकत्ता के पुरातनपंथियों की नींद खुली। उन्होंने राममोहन के लिखे का जवाब दिया। राममोहन भी रुके नहीं। उन्होंने वेदांत को प्रतिष्ठित करने का उपक्रम शुरू कर दिया। उस समय वहां उनकी तरह का निपुण कोई था नहीं। उनके विपक्षियों ने राममोहन की वेदांत की व्याख्या को एक भूल बताते हुए एक पुस्तक लिखी। मृत्युंजय विद्यालंकार तथा काशीनाथ तर्कपंचायनन जैसे संस्कृत के बड़े-बड़े ज्ञानी विद्वानों ने राममोहन के तर्कों की जोरदार शब्दों में निंदा की। और राममोहन ने उन्हें जवाब देना शुरू कर दिया। इस तरह जो शास्त्र विचार शुरू हुआ वैसा शास्त्र तर्क विचार उन्नीसवीं शताब्दी में और कहीं नहीं दिखाई देता।

राममोहन के विरोधियों ने कभी-कभी तो सभ्यता की हदें भी लांघ दी। उन पर व्यक्तिगत आक्रमण करने से भी बाज नहीं आए। मजाक तो उड़ाते ही, राममोहन का विरोध करते समय वे जिस तरह की गालीगलौच की भाषा का प्रयोग करने लगते उस का उल्लेख

यहां नहीं किया जा सकता। किंतु राममोहन की भाषा हमेशा एक सी रही। मृत्युंजय की 'वेतांतचंद्रिका' प्रथम श्लोक में 'ब्रह्मवादी की खिल्ली उड़ाते हुए मंगलाचरण से शुरू होकर 'अश्वचिकित्सा' तथा 'गोपा श्वसुलरायगमन' जैसे तरह-तरह के व्यंग्य और भद्दे वाक्यों से भरी पड़ी है। इस तरह से विरोधियों की भाषा काफी आहत करने वाली है। राममोहन ने जोर देकर कहा था कि 'अगर ठीक ढंग से कोई वेदांत की व्याख्या करे तो वह कीड़े-मकोड़ों से भी घृणा नहीं कर पाएगा, क्योंकि 'ब्रह्म' पूरी सृष्टि में व्याप्त है।' ऐसे थे— राममोहन। केवल मनुष्य मात्र में नहीं, बल्कि वेदांत, सृष्टि के समस्त जीवों में प्रेम पैदा करता है, उन्होंने यह बात सबको बता देनी चाही।

मृत्युंजय ने राममोहन के बारे में लिखा है कि उन्होंने घोड़े के इलाज के लिए प्रिस्क्रप्शन लिखा है। काशीनाथ तर्क पंचानन ने राममोहन को पाखंडी कहा है। राममोहन ने काशीनाथ के जवाब में 'पथ्यप्रदान' नामक पुस्तक की रचना की थी। पुरातनपंथी पंडितों ने, जो शास्त्र में लिखा था, उसे ही सत्य मान लिया था। कोई तर्क तो उनके मन में उठता नहीं था 'शायद जिन लोगों ने शास्त्र लिखा था, और विभिन्न शास्त्रकारों के बीच जो मतभेद था अथवा एक ही शास्त्र की व्याख्या में एक शास्त्रकार का दूसरे से जो मतभेद था, वह भी उन्हें दिखाई नहीं देता था। किंतु राममोहन पक्ष और विपक्ष दोनों के मतों की जांच-पड़ताल करते थे। और पुरातनपंथी व बाकी के पंडित उसी पुरानी नीचता की लकीर पीटते फिर रहे थे, उसी का प्रचार कर रहे थे। राममोहन ने बंगला भाषा में शास्त्र की आलोचना करनी शुरू की। यह उस समय के लिए घोर अन्याय था। राममोहन को अधार्मिक, पापी माना जाने लगा। कहा गया कि

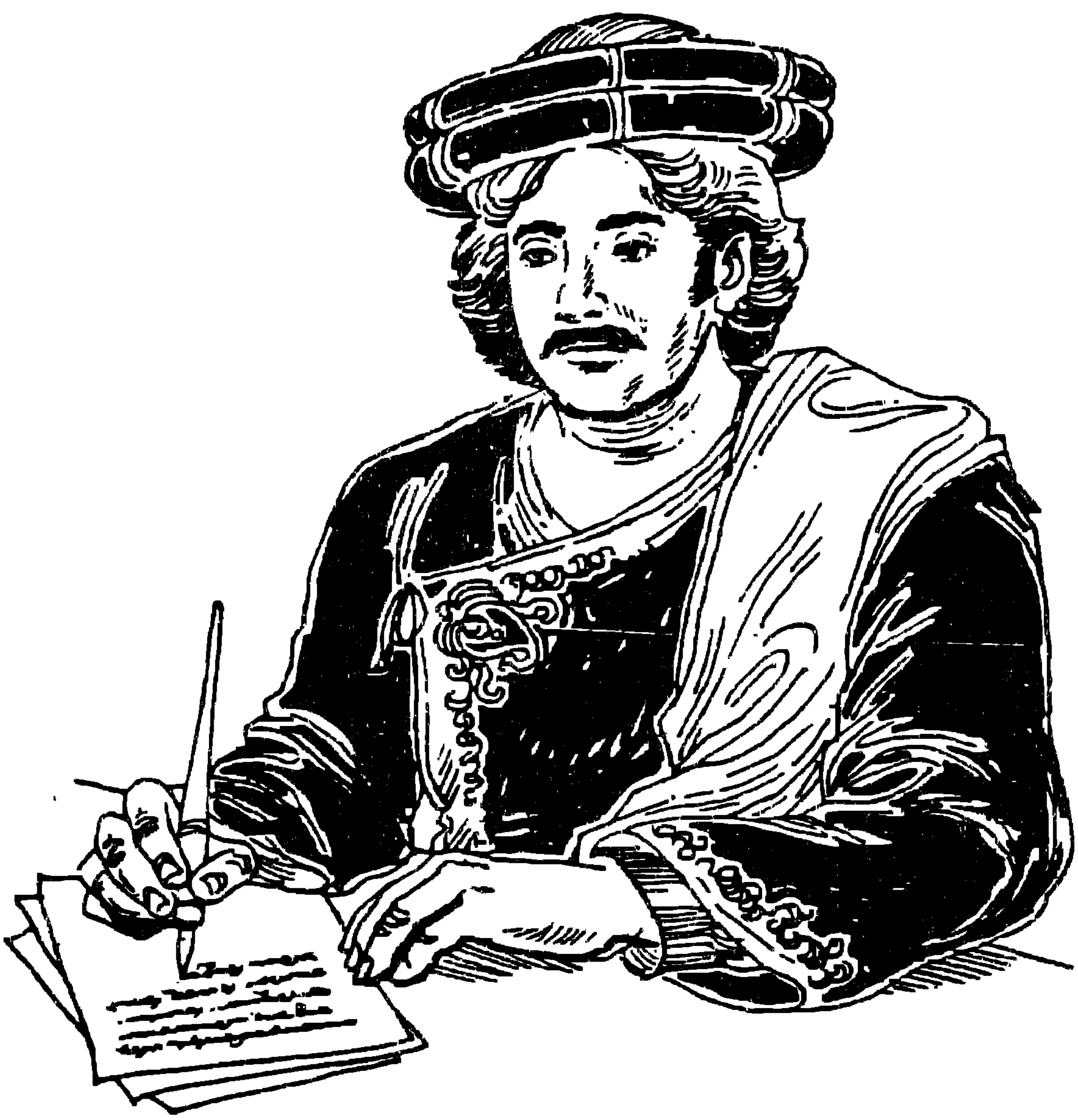
राममोहन तो धर्म को नष्ट करने पर तुले हुए हैं। पुरातनपंथी समाज आतंकित हो उठा था। अब तो सब कुछ नष्ट हो गया। राममोहन तो मूर्ति पूजा बंद करवा देना चाहते हैं। अनेक देवताओं के अस्तित्व को तो मानते ही नहीं हैं। उन लोगों ने इस बात को भी मुद्दा बनाया कि जिस चीज को, जिस धर्म को लोग इतने दिनों से मानते आ रहे थे, राममोहन ने उसी धर्म के ख़िलाफ़ जेहाद की घोषणा कर दी है। समाज में जन्म, मृत्यु, शादी-विवाह, पाप-पुण्य को लेकर इतने दिनों से जो शांति बनी हुई थी, भंग हो गई। सतीदाह को लेकर राममोहन की आधुनिक सोच से वे लोग विचलित हो उठे थे। हालांकि इस आघात के विरोध में उन्होंने भी आघात किया था।

साधारण आदमी इतनी सैकड़ों चिंताएं नहीं करता। वे तो प्राचीन शास्त्रों को सब कुछ मानकर अपने चारों तरफ चारदीवारी खड़ी कर निश्चिंत हो गए थे। लेकिन राममोहन के लेखन में नींद उड़ा देने वाली पुकार थी। वे सबसे यही कहते कि झगड़े के विरोध में गालीगलौच करना ठीक बात नहीं है। तर्क, ज्ञान और विचार के माध्यम से ही वे लोगों में जागृति लाने की कोशिश करेंगे। उन्होंने भागवत का उल्लेख करते हुए कहा था, परमेश्वर के प्रति प्रेम, सबके प्रति भाईचारा, मूर्खों के प्रति दया और विरोधियों के प्रति उपेक्षा का भाव रखने से सब कुछ मंगल होता है। जब राममोहन प्रेम, बंधुत्व और दया की बात कर रहे थे, तब उनके समक्ष एक मात्र मनुष्य ही था। वे सोचते थे कि किस प्रकार मनुष्य को अज्ञानता के अंधकार से निकाल कर प्रकाश में लाया जा सकता है। राममोहन तो ज्ञान से प्रकाशित थे।

अब राममोहन के साथी, सहयोगियों की बात भी कर ली जानी चाहिए। उन्होंने राममोहन की धर्मचिंता को कई प्रकार से आगे

बढ़ाया, लेकिन ऐसा भी नहीं था कि वे सब राममोहन की हर बात आंख मूंदकर मान ही लेते थे। ये राममोहन की प्रगतिशील विचारधारा के समर्थक थे। राममोहन ने तरह-तरह के तर्कों द्वारा बताया कि इस देश में ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन के चलते लोगों का एक ऐसा वर्ग तैयार हो सका है, जो हर क्षेत्र में सोच-विचार करने के लिए उत्सुक है। उसी वर्ग को आज मध्यवर्ग के नाम से जाना जाता है।

यहां पर एक बात करना और प्रासंगिक जान पड़ रहा है। जिस समय राममोहन ने बंगला भाषा में लिखना शुरू किया था उस समय बंगला में गद्य की चर्चा बहुत कम होती थी। लोग सिर्फ कामकाज के लिए गद्य का इस्तेमाल कर लेते थे। राममोहन के लेखन से बंगला



में गद्य का एक स्वरूप भी विकसित होना शुरू हो गया। इसके बाद से ही फोर्ट विलियम कालेज के मुंशी और पंडितों ने अंग्रेजों के लिए बंगला गद्य में पुस्तकें लिखनी शुरू की थीं। वे सब पुस्तकें पाठ्य पुस्तकें थीं। उनमें सामान्य आदमी के लायक कुछ नहीं था। लेकिन राममोहन ने सभी के लिए पुस्तकें लिखीं। स्कूल, कालेज में पढ़ाई जाने वाली किताबें नहीं लिखीं। राममोहन ने बंगला गद्य को जन साधारण तक पहुंचा दिया।

उनका गद्य तर्क प्रधान गद्य था। अपने तर्क को भाषा में किस तरह सजाया जा सकता है, यह राममोहन को बखूबी मालूम था। राममोहन ने लिखते समय यह ठीक तरह से समझ लिया कि गद्य के विभिन्न पदों का ठीक से अन्वय संभव नहीं है। उन्होंने क्रियापद के साथ कर्तापद को भी सीधा-सीधा जोड़ कर लिखना शुरू किया। वे व्यर्थ में वाक्य को लंबा करने के लिए सीधे-सीधे योग को तोड़ना उचित नहीं समझते थे। इसके फलस्वरूप बंगला गद्य के विषयों में भी नयापन दिखाई देने लगा। उन्होंने बंगला भाषा को लेकर जो चिंतन-मनन किया था उस का प्रमाण हमें उनकी 'गौड़ीय व्याकरण' पुस्तक में मिलता है।

7

जिस तरह हिंदू पुरातनपंथियों ने राममोहन का विरोध करना शुरू किया था, उसी तरह ईसाई मिशनरियों ने भी उनका विरोध शुरू कर दिया। लेकिन राममोहन इस क्षेत्र में भी रुके नहीं। ईसाई धर्म की भूल और गलतियों को भी उजागर करने की चेष्टा की।

मिशनरियों ने तो 18वीं शताब्दी में ही हिंदू धर्म के प्रति आक्रमण

शुरू कर दिया था। मानोएल द आसूंबंसां तथा दोम अंतानियो ने तो हिंदू धर्म को एक पतित धर्म की संज्ञा दी थी। राममोहन मूर्तिपूजा के विरोधी थे। ईसाई भी इसी मत को मानते थे, यही कारण था कि एक समय ऐसा था जब मिशनरियों की राममोहन से काफी दोस्ती थी। राममोहन श्रीरामपुर के ईसाई मिशन में जाया करते थे और उन लोगों ने राममोहन की प्रार्थना सभा में सहयोग दिया था। मिशनरी के लोगों ने इस बात को एक सुअवसर के रूप में लिया और पूरे देश में यह प्रचार कर दिया कि राममोहन ईसाई धर्म को ही सर्वश्रेष्ठ धर्म मानते हैं। तब विदेश में भी राममोहन के धार्मिक विचारों की चर्चा हुई थी।

लेकिन अचानक ही मिशनरी के लोग राममोहन से नाराज हो गए। उन्होंने 1820 में 'द परसेप्टस आफ जीसस गाइड टू जीस एंड हैपीनेस' नामक किताब लिखकर प्रकाशित करवा दी। बस, जैसे आग में घी पड़ गया। इस किताब में राममोहन ने ईसाई धर्म का सार संकलन किया था। और जोर देकर कहा था कि बाइबिल की अलौकिक घटनाओं और ईसामसीह के ईश्वरत्व के बारे में आंख बंद करके विश्वास नहीं कर लेना चाहिए। दरअसल राममोहन तो ईश्वर को छोड़कर इस तरह के किसी भी प्रेरित पुरुष के बारे में आसानी से विश्वास नहीं कर पाते थे। उन्होंने इस तरह की परिकल्पनात्मक बातों को रद्द कर दिया। इस्लाम धर्म की व्याख्या करते समय भी उन्होंने पैगंबरत्व पर आस्था व्यक्त नहीं की थी। यही वजह थी कि राममोहन ने 'ब्रह्मानिकल मैगजीन' निकाल कर मिशनरियों का प्रतिवाद किया और एक तरह से वादविवाद छिड़ गया। इसमें राममोहन को अपने कुछ दोस्त भी खोने पड़े।

ईस्ट इंडिया कंपनी के कुछ पढ़े-लिखे कर्मचारी जरूर राममोहन

की समस्त गतिविधियों पर नजर रखते थे। वे हर समय राममोहन के विचारों का सम्मान करते थे। उनके संस्कार में कुछ हद तक राममोहन भी सहायक थे।

बाइबिल की अलौकिक कहानी और ईसामसीह के अवतार को भले ही वे नहीं मानते थे किंतु ईसामसीह के असाधारण चरित्र और नैतिक साहस के प्रति उनके मन में हमेशा से श्रद्धा थी। उनके विरोधियों ने इसे उनकी गलती समझा। डोकार स्मिड ने उनका काफी विरोध किया।

उन्होंने 'मार्शमान' लिखकर भाषा के माध्यम से राममोहन पर आक्रमण किया। उन्होंने अपनी इस किताब की भूमिका में लिखा था कि बाइबिल के शिक्षा दर्शन से ही मानव समाज की शांति की रक्षा हो सकती है। छोटे से लेकर बड़े हर आदमी तक बाइबिल की शिक्षाओं का प्रचार होना चाहिए। बाइबिल में मनुष्य के लिए सुख और शांति की शिक्षा दी गई है। यद्यपि मार्शमान में भाषा के माध्यम से राममोहन के साथ गालीगलौच की गई थी, लेकिन राममोहन पर इसका कोई असर नहीं हुआ। वे बार-बार कहते थे कि बात कहने के लिए तर्क दिए जाने चाहिए, तर्क का मैं आदर करता हूं, किंतु तर्क नहीं दिए जा रहे। विरोधी पक्ष के लोग राममोहन के ख़िलाफ़ उसी तरह बोलते रहे। उस समय की विख्यात पत्रिका 'इंडिया गजट' ने लिखा था कि मिशनरियों के प्रति राममोहन खास सतर्क थे। उनका मन सतर्क था। बुद्धि प्रखर थी। तलवार की तेजधार की तरह धारदार तर्क थे और इन सबके साथ एक भद्रता भी सम्मिलित थी। इन सारे तर्कों को राममोहन ने अपनी बुद्धि द्वारा खारिज कर दिया था। राममोहन ने तो यह भी कहा था कि सार्वजनिक सहिष्णुता की भावना ही हिंदू धर्म की मूल नीति है।

किंतु इसी वजह से उन्होंने हिंदू धर्म पर होने वाले आक्रमणों का प्रतिवाद नहीं किया, बल्कि उन्होंने एक धर्मतत्त्व समीक्षक के रूप में प्रतिवाद किया था। ईसाई लोगों ने जिन तीन ईश्वरों—गाड, जीसस तथा हॉली घोस्ट की चर्चा की है, राममोहन ने उन तीनों की आलोचना की थी। लेकिन उन्होंने इस बात पर काफी बल दिया था कि बाइबिल में एकेश्वरवाद की भावना प्रमुख है।

तीनों ईश्वरों के प्रति विश्वास रखने वालों के लिए राममोहन ने एक छोटा सा नाटक लिखा था। उस नाटक का एक छोटा सा अंश यहां प्रस्तुत है।

पात्र : एक पादरी और चीन के तीन शिष्य

पादरी : ईश्वर एक है या अनेक हैं?

पहला शिष्य : ईश्वर तीन हैं।

दूसरा शिष्य : ईश्वर दो हैं।

तीसरा शिष्य : ईश्वर है ही नहीं।

पादरी : (निराश) : हाय-हाय तुम लोग तो शैतानों जैसी बातें करते हो।

तीनों शिष्य : (एक साथ) आपने ही तो ऐसा बताया था।

पादरी : वो जो तुम लोग तीन ईश्वर की बात कर रहे हो वह तो आधा सच है। यह हमेशा याद रखो कि उन तीनों को मिलाकर ही एक ईश्वर बनता है।

पहला शिष्य : हम चीन देश के रहने वाले हैं। तीन को एक करने का हिसाब हम नहीं जानते।

पादरी : और तुम मूर्ख! ओ रे दूसरे शिष्य, तुमने ईश्वर को दो कैसे बताया?

दूसरा शिष्य : आपने ही तो बताया था कि उन तीनों में से एक पश्चिम जाकर मृत्यु को प्राप्त हो गया था। उसके बाद तो दो ही बच रहे हैं न।

पादरी : ओ रे तीसरे शिष्य, मूर्ख, तुमने कैसे कहा कि ईश्वर एक है।

तीसरा शिष्य : मैंने आपकी बात सुन कर समझा था कि ईश्वर एक है।

पादरी : तो फिर तुमने यह कैसे कह दिया कि ईश्वर है ही नहीं?

शिष्य : (हाथ में कोई एक चीज लेकर) देखिए, मेरे हाथ में यह जो वस्तु है, अगर इसे मैं कहीं और छिपा दूं तो मेरे हाथ में कुछ भी नहीं बचेगा।

पादरी : यहां ऐसा तर्क देने का क्या मतलब है?

शिष्य : आपने कहा था कि यीशु ही ईश्वर है। वे तो आज से 1800 साल पहले मृत्यु को प्राप्त हो गए थे। तो इससे तो साबित होता है कि अब ईश्वर है ही नहीं।

पादरी : तुम लोगों की मुक्ति के लिए मैं ईश्वर से प्रार्थना करूंगा। किंतु यह जान लो कि तुम लोग जितने दिन जिंदा रहोगे कष्ट झेलते रहोगे।

यह राममोहन की रसिकता का एक प्रमाण नहीं बल्कि उनके विरोधियों की मूर्खता के प्रति एक कठोर प्रहार है। इससे पता चलता है कि किस तरह से राममोहन मिशनरी के लोगों और ईसाई धर्म की पोंगापंथी की ख़िलाफ़त कर रहे थे।

इस तरह हम देखते हैं कि किस तरह मुसलमान, हिंदू और ईसाई पुरातनपंथी राममोहन के विरोध में उठ खड़े हुए थे। उस समय का

जो कलकत्ता था उसमें यह तर्कयुद्ध काफी भीषण रूप ले चुका था, इसमें तो कोई संदेह नहीं है।

राममोहन की आत्मीय सभा भी बहुत दिनों तक कायम नहीं रह सकी। इन्हीं दिनों उनकी ऐडम नामक अंग्रेज से दोस्ती हो गई। उनके साथ मिल कर उन्होंने 1821 में 'यूनीटेरियन कमेटी' की स्थापना की। राममोहन इस बात को जानते थे कि उनकी विचारधारा सात समंदर पार तक पहुंच गई है। थोरो संप्रदाय और अतींद्रीयवादी भी उनके लेखन में मुग्ध हो चुके हैं। काफी दिनों बाद राममोहन की इसी 'यूनीटेरियन कमेटी' के संपर्क में, एम.डी. कनवे आए और उन्होंने कहा कि हिंदू धर्म के इन चिंतकों के संपर्क में आने से ईसाई धर्म पर भी काफी प्रभाव पड़े हैं। इस सभा के चलते राममोहन इतने विख्यात हो गए कि विलायत में भी इसकी शाखाएं खुलीं। फ्रांस और ट्रांसिल्वेनिया से भी एकेश्वरवाद में विश्वास रखने वाले लोग राममोहन से मिलने के लिए आने लगे। हारवर्ड विश्वविद्यालय के सभापति वर्कलैंड भी राममोहन से मिलने आए। इन सब की सूचना इंग्लैंड भी जा पहुंची। वहां राममोहन अपने बेटे राधाप्रसाद, कई आत्मीय मित्रों तथा ताराचंद चक्रवर्ती और चंद्रशेखर देव नामक दो शिष्यों के साथ गए भी थे। वहां ऐडम ने राममोहन को काफी सहयोग दिया था। विरोधी ईसाईयों ने ऐडम को धर्म से निकाल देने की कोशिश की, किंतु निकाल न सके। यह एक प्रकार से मार्टिन लूथर की तरह से ईसाई धर्मांधता के ख़िलाफ़ उठाई गई आवाज थी। राममोहन के बारे में ऐडम का कहना था कि राममोहन के मन में स्वाधीनता के प्रति गहरा अनुराग था। वे अपने मन के साम्राज्य में स्वतंत्र विहरना चाहते थे। राममोहन ने देशाचार, वंश परंपरा और व्यक्तिगत पदाधिकार जैसी बाधाओं को झटक कर फेंक

दिया था। राममोहन एक विश्वात्मबोधक धर्म की स्थापना करना चाहते थे। उन्होंने हिंदू, इस्लाम, बौद्ध और ईसाई धर्म के सत्य को ढूंढ़ने की कोशिश की और वे उसमें सफल भी हुए। वे देश की सीमा से पार चले गए थे। ऐडम की ही तरह के कई दूसरे धार्मिक और राजनीतिक विद्वानों को भी राममोहन का स्नेह प्राप्त था। जो ईसाई धर्मावलंबी राममोहन को गालियां दिया करते थे, उनके लिए राममोहन का यही कहना था कि ईश्वर उन्हें शक्ति दे, ताकि उनके भीतर आदमी-आदमी के बीच जो भेदभाव की भावना शेष है वह समाप्त हो सके और वे मानवजाति की शांति और एकता के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकें। यही उनके विश्व धर्म का मर्म था।

ताराचंद चक्रवर्ती और चंद्रशेखर देव ने एक दिन प्रस्ताव रखा कि हमें अपनी एक धार्मिक सभा खोलनी चाहिए। राममोहन को यह प्रस्ताव अच्छा लगा। उन्होंने देवेंद्रनाथ ठाकुर और दूसरे लोगों के साथ विचार-विमर्श करने के बाद ब्रह्मोपासना के लिए एक सभा की स्थापना की, नाम रखा गया–'ब्रह्म सभा'।

ब्रह्मसभा की स्थापना 1828 में हुई थी। हर शनिवार को शाम 7 बजे सभा शुरू होती और 9 बजे तक चलती। एक हिंदुस्तानी ब्राह्मण वेद उत्सवानंद वेदांतवागीश उपनिषद का पाठ करते। हरिहरानंद तीर्थस्वामी के छोटे भाई रामचंद्र विद्यावागीश वैदिक श्लोकों की व्याख्या करते। इसके बाद गीत होता। गीत गाते विष्णु चक्रवर्ती और गुलाम अब्बास पखावज बजाते। राममोहन को विष्णु चक्रवर्ती द्वारा गाए, संगीतबद्ध संस्कृत के श्लोक काफी पसंद थे। इसी क्रम में राममोहन ने अपने रचित गीत को ध्रुपद में निबद्ध किया। इस गीत का मिजाज प्रचलित बंगाली गीतों से कुछ अलग था।

ब्रह्म सभा 1830 में पूरी तरह से एक नए घर में स्थापित की

गयी। रामचंद्र विद्यावागीश आचार्य नियुक्त हुए। इस सभा में हिंदू, मुसलमान, ईसाई और बौद्ध सभी संप्रदाय के लोगों के लिए खुली छूट थी। इस सभा के मुख्य उद्देश्य थे—जीव हत्या नहीं होगी, जीवों को आहार नहीं बनाया जाएगा और किसी भी धर्म के उपास्य अथवा आराध्य देव का मजाक नहीं उड़ाया जाएगा। प्रेम, नीति, शक्ति दान, साधुता की उन्नति ही सभा का उद्देश्य था। मूर्तिपूजा वर्जित थी। लोगों में सभी संप्रदायों के साथ भाईचारे की भावना जगाने का प्रयास किया जाएगा। लोगों के बीच उपदेश, प्रार्थना और संगीत के माध्यम से इस दिशा में प्रयास किया जाएगा। भाषण, उपदेश, प्रार्थना और संगीत के माध्यम से इस दिशा में प्रयास किया जाएगा। राममोहन द्वारा रचित गीत 'के भूलालो हाय! कल्पना के सत्य करि जान, ए की दाय, आपनी गड़ेद्दो जाके, जे तोमार बसे तांके, केमने ईश्वर डाके करो अभिप्राय? कखनो भूषन आहार, खनेके स्थापह, खनेक करोह संहार, प्रभु बले मान जारे, सम्मूखे नाचाओ तारे, हेनो भूल ए संस्कारे देखे छो कोथाय?' आत्मीय सभा में ही गाया गया था। इस तरह पांचाली, कीर्तन और रामप्रसादी गान की धारा में एक नया प्रवाह जुड़ गया, जिसका नाम पड़ा 'ब्रह्म संगीत।'

8

राममोहन कुसंस्कारों के ख़िलाफ़ लड़ने वाले एक साहसी योद्धा थे। वे अपनी लड़ाई कलम की सहायता से लड़ते थे। उन्होंने अखबार भी निकाला। दो साल के भीतर उन्होंने तीन अखबार निकाले। इनके नाम थे 'ब्रह्मानिकल मैगजीन', 'संवाद कौमुदी' और 'मिरातुल अखबार।' पहला अखबार अंग्रेजी और बंगला में एक साथ छपता

था, दूसरा बंगला में और तीसरा फारसी में। इससे हमें पता चलता है कि राममोहन सब के पास पहुंचना चाहते थे, इसीलिए उन्होंने तीन भाषाओं में अखबार निकाले। इन अखबारों को पढ़ने के बाद कुछ लोग दुःखी होते, कुछ काफी प्रसन्न होते, कुछ लोग राम मोहन की होड़ में कानून का हवाला देकर राममोहन पर अंकुश लगाना चाहते थे।

राममोहन चुप लगाकर बैठ जाने वालों में से नहीं थे। जैसे ही उन्होंने सुना कि अंग्रेजों ने उनका अखबार बंद करवाने का ताना-बाना बुनना शुरू कर दिया है तो उन्होंने मिरातुल अखबार बंद कर दिया। अंग्रेज गर्वनर जनरल की आंखों में खून उतर आया। उन्होंने कहा कि कोई भी अखबार निकालने से पहले पुलिस के पास हलफनामा देना होगा और सेक्रेटरी से लाइसेंस लेना पड़ेगा।

राममोहन को यह अपमान सहन नहीं हुआ। उनका गुस्सा फट पड़ा, किंतु यह जो कहा गया था उसे उन्होंने शराफ़त से सुना। जो कुछ व्यंग्य अथवा तर्क-वितर्क किया वह सिर्फ भाषा के ही माध्यम से किया। अंग्रेजी फ़रमान का विरोध करते हुए राममोहन ने कहा, लाइसेंस तो सिर्फ अंग्रेजों के चाहने वालों को ही मिल पाएगा। क्योंकि नौकरों-दरबानों की भीड़ को ठेलकर साहब तक पहुंचाना और लाइसेंस प्राप्त करना उनके वश की बात नहीं थी, और वे जाएंगे ही क्यों? उनकी तो काफी प्रतिष्ठा है। वे अपने इस सम्मान को दरबानों और नौकरों के सामने बेचने नहीं जाएंगे। वे अदालत में जाएंगे। यह तो बहुत बेइज्जती की बात होगी कि जो नीचे के लोग हैं, वही ऐसा काम कर सकते हैं। और जो अंग्रेजी अफसर लाइसेंस देगा, संभव है फिर उसे वापस भी ले ले, तो क्या लोगों की नजर में यह अच्छी बात होगी?

राममोहन हर अन्याय के ख़िलाफ़ खड़े होने की शक्ति लेकर पैदा हुए थे। उन्होंने अंग्रेजी ताकत की कभी परवाह नहीं की। जिन लोगों ने उनका अखबार पढ़ा था, उन्होंने भी इस बात को स्वीकार किया था, कि उन्हें जो कहना होता था, वे खुले मन से कहते थे। अखबार के माध्यम से, आजादी लाने के संकल्प से, राममोहन ने भाषा के माध्यम से विरोध करने वाले अपने कई दोस्तों को भी इसमें शामिल कर लिया। बाद में खुद राममोहन ने रानी विक्टोरिया के पास जाकर भी विरोध जताया था।

राममोहन ने हेमिल्टन साहब को जो सीख दी थी वही सीख इस कानून को बनाने वाले मार्केटन को भी देने की कोशिश की। देश में एक तरह से तर्क युद्ध शुरू हो गया था। देशवासियों ने विरोध प्रदर्शन के नाम पर अपनी मर्यादा,अपने भविष्य को दाव पर लगाना शुरू कर दिया था। जब अंग्रेज साहब ने विद्यासागर के आने पर अपना पांव मेज के ऊपर रखे हुए ही अपमानित करने की गरज से उन्हें अंदर बुलाया तो विद्यासागर भी चप्पल पहने हुए ही मेज के ऊपर चढ़ गए और साहब को नमस्ते किया। यह और कुछ नहीं अन्याय का प्रतिकार था। मतलब, जो साहब करेंगे वही देशवासी भी करेंगे। यह एक प्रकार की उस समय की मनोभावना थी।

आत्मसम्मान गंवाकर राममोहन कोई भी काम नहीं करते थे। एक बार गर्वनर जनरल विलियम वेंटिक ने अपने अंगरक्षक को राममोहन के पास भेजा। उन्होंने राममोहन को बुलवाया था। राममोहन ने संदेश भिजवा दिया कि अभी वेंटिक से मिलने का उनका मन नहीं है। वे एक साधारण आदमी थे। धर्म-कर्म की चर्चा करते हुए ही समय बिताते थे। राजा, महाराजाओं के पास नहीं जाते थे।

अगर उनकी जगह दूसरा कोई होता तो खबर पाते ही उसके

पास चला जाता। राममोहन वेंटिक के खुद आने की उम्मीद भी नहीं रखते थे। लेकिन वेंटिक तो बुद्धिमान आदमी थे, वे समझ गए कि अंगरक्षक को भेजने की बात राममोहन को बुरी लगी है। इस बार वेंटिक ने अंगरक्षक को समझाकर भेजा। जाकर कहना कि राममोहन के दर्शन पाकर वेंटिक को प्रसन्नता का अनुभव होगा। राममोहन को राजाओं, महाराजाओं के बुलाने का तरीका ठीक नहीं लगता था, किंतु वेंटिक का एक दोस्त की तरह बुलाने का ढंग पसंद आया।

लेकिन यह ताकत राममोहन को मिली कहां से थी? हम तो यही कहेंगे कि उन्होंने खुद ही अपनी साधना के बल पर यह शक्ति अर्जित की थी।

एक बार राममोहन ने बातचीत के दौरान एक पादरी को काफी अच्छा जवाब दिया था। वेंटिक जैसा स्वभाव तो हर अंग्रेज का नहीं था। पादरी लोग जानबूझ कर मनुष्य को पतित कहा करते थे। कोई कहता कि भारत तो अंग-भंग, भूत-प्रेतों का देश है। इनका उद्धार करना होगा। ईसाई धर्म में इन्हें धर्मांतरित करने से ही इनकी मुक्ति संभव हो सकेगी। लेकिन भारतवासी कैसे मान जाते? बहुत सारे लोग तो पादरियों के पास भी नहीं जाना चाहते थे। पादरी सोचते थे कि अगर कुछ बड़े-बड़े लोगों को ईसाई धर्म में दीक्षित करना शुरू कर दिया जाए तो धीरे-धीरे पूरा भारत ही ईसाई धर्म को मानने लगेगा। लेकिन पादरी यह भी जानते थे कि अच्छी-अच्छी बातों से सबको नहीं बहकाया जा सकता है। इसलिए बड़ी नौकरियों और पदवियों का लालच देकर बड़े-बड़े लोगों को अपनी तरफ आकर्षित करने की कोशिश की। उनकी निगाह राममोहन की तरफ भी थी। राममोहन का अंग्रेजों से मिलना-जुलना था, ईसाइयों से उनकी दोस्ती

थी। इसलिए पादरी मिडलटन ने सोचा कि राममोहन को आसानी से अपने वश में किया जा सकता है। उन्होंने धर्मांतरण की एवज में उनका जैसा सम्मान था, बड़े-बड़े अंग्रेजों की दोस्ती, ईस्ट इंडिया कंपनी में किसी बड़े पद और मान-सम्मान का लालच दिया। राममोहन जोर से दहाड़े, 'पादरी! मुझे लालच दे रहे हैं?' और वे घृणा से मिडलाटन के घर से बाहर आ गए। उसके बाद फिर कभी उस घर में नहीं गए।

9

नवाबी खत्म हो गई थी और अंग्रेजी शासन शुरू हो गया था। पढ़ाई-लिखाई का तरीका पुराना ही चला आ रहा था। राममोहन ने तो खुद पढ़ाई-लिखाई की थी। उन दिनों अरबी-फारसी और संस्कृत जानना बड़े लोगों का लक्षण माना जाता था। इन्हीं दोनों भाषाओं की राजदरबार में पूछ भी थी। गण्य-मान्य लोगों की पढ़ाई-लिखाई का अर्थ था इन्हीं दोनों भाषाओं पर अधिकार प्राप्त करना। क़ाज़ी अथवा चंडीमंडप उन दिनों की सर्वोच्च अदालत हुआ करते थे। उनकी भाषा भी अरबी-फारसी अथवा संस्कृत हुआ करती थी, लेकिन इसका ऐसा नहीं था कि बंगला भाषा की कोई कद्र नहीं थी। लेकिन इस्तेमाल साधारण कामकाज के लिए ही किया जाता था। शिक्षित बंगालियों के यहां इसका कोई खास महत्त्व नहीं था।

राममोहन इस शिक्षा पद्धति में बदलाव चाहते थे। कुछ नए ढंग से स्कूल भी खुल गए थे, लेकिन उनमें नएपन की छाप तनिक भी नहीं पड़ी थी। स्कूल खोलने वालों की निगाह सिर्फ पैसा कमाने पर थी। बाकी स्कूलों से ज्यादा फीस लेकर अबोध बच्चों को कुछ गलत-

सही सिखा दिया करते थे। और इस बात को तो मानना ही होगा कि इस तरह की शिक्षा पद्धति देने की जिम्मेदारी ईस्ट इंडिया कंपनी की थी। लेकिन उस समय इससे एक फायदा तो जरूर हुआ कि साहबों के बीच में से यहां के भी कुछ लोगों ने तरक्की कर ली। कुछ लोगों ने तो यहां तक खोज कर ली कि हमारी भाषा और विदेशियों की भाषा सगोत्री हैं। फिर वे लोग हमारे देश को भूत-प्रेतों का देश क्यों मानते हैं? विलियम जोन्स ने एशियाटिक सोसाइटी की स्थापना करके यही बात सिद्ध करने की कोशिश की। उन्होंने शिक्षा संस्कार के क्षेत्र में भी कुछ-कुछ अपने विचार दिए और संस्कारों की उन्नति के लिए आगे आए।

राममोहन ने प्राचीनकालीन शिक्षा व्यवस्था को बदलने की आवश्यकता महसूस की। उन्होंने महसूस किया कि हमारे देश की युवा पीढ़ी में भी अंग्रेजी शिक्षा के प्रति इच्छा जाग उठी थी, उन्होंने ईस्ट इंडिया कंपनी से स्वीकृति प्राप्त कर एक कॉलेज खोलने का विचार किया। उनकी इस परिकल्पना को सार्थक बनाया वैद्यनाथ मुखोपाध्याय ने और उसमें राममोहन राय, डेविड हेयर और द्वारकानाथ ठाकुर ने उनकी सहायता की। इनके अलावा भी अनेक लोग इसके लिए श्रद्धा के साथ जुड़े। 1816 में सुप्रीम कोर्ट के प्रधान न्यायाधीश एडवर्ड हाइड ईस्ट ने इस विषय पर समीक्षा के लिए अपने घर पर एक मीटिंग बुलाई। कलकत्ता के सभी प्रतिष्ठित लोगों को इस मीटिंग में बुलाया गया। वहां राममोहन के सारे समर्थक मौजूद थे।

लेकिन वहां उनके विरोधियों की संख्या भी कम न थी। राधाकांत देव, जयकृष्ण सिंह, मतिलाल शील आदि लोग भी उपस्थित थे। राममोहन इस मीटिंग में आए थे या नहीं इस बात का कोई प्रमाण नहीं मिलता।



कॉलेज खुलने के लिए काफी पैसों की जरूरत थी। इसलिए चंदा इकट्ठा करने का प्रस्ताव रखा गया और कॉलेज चलाने के लिए एक प्रबंध समिति बनाने की बात भी उठी। इस समिति के लिए किसी ने राममोहन का भी नाम उठाया। फिर क्या था? इस पर

तो बावेला मच गया। विरोधियों ने कहा कि कॉलेज के किसी भी कार्य व्यापार में राममोहन का नाम नहीं रहेगा, अगर रहेगा तो इस कॉलेज की छाया तक नजर नहीं आएगी।

अंग्रेज हाइड स्टेट अवाक रह गया। समीक्षा तो शिक्षापद्धति को लेकर होनी थी। यहां व्यक्तिगत लड़ाई किस तरह शुरू हो गई? इसे ही चंड़ीमंडप का घंटा कहते हैं। विरोधियों को एतराज किस बात से है? राममोहन हिंदू विरोधी हैं। उनके साथ बैठा ही नहीं जा सकता।

इस पर क्या राममोहन ने जोब्बाचापकान पहनना छोड़ दिया? ये सब बातें छोड़िए।

हाइड स्टेट ने कौतुक से हंसते हुए कहा, 'लेकिन वे तो ईसाई हैं और काफी हद तक ईसाई हैं। अगर वे इस कॉलेज के लिए पैसा दें तो आप लोग लेंगे या नहीं?' विरोधियों ने कहा कि 'अगर हाइड स्टेट पैसा दें तो हम जरूर ले लेंगे, लेकिन राममोहन का दिया हुआ पैसा तो कभी नहीं लेंगे।'

राममोहन को इस बात का पता चला। वे चाहते तो इस कॉलेज की प्रबंधन समिति में आसानी से आ सकते थे। लेकिन नहीं, उनका मानना था कि शिक्षा के संस्कार और शिक्षा की उन्नति से देश की उन्नति होगी। देश उनसे ज्यादा बड़ा है। वे अलग हट गए। एक हरे पेड़ को उन्होंने कटने देना उचित नहीं समझा। हालांकि इस कॉलेज को खोलने के लिए उन्होंने काफी मेहनत की थी। बड़े उत्साह के साथ इसके सपने संजोए थे। किसी भी उपकारी व्यक्ति के लिए यह व्यवहार उचित था। चाहे जितना भी कष्ट क्यों न झेलना पड़े, देश की रक्षा करनी है। एक नया झंडा फहराना है।

राममोहन को अलग रखकर राममोहन का सपना साकार हुआ।

'विद्यालय महापाठशाला' की तैयारियां शुरू हो गई, जिसका बाद में नाम पड़ा 'हिंदू कॉलेज' और उसके बाद चलकर उसी का नाम 'प्रेसीडेंसी कॉलेज' पड़ा।

बाद में राममोहन ने एक और स्कूल खोलने की कोशिश की। तब अंग्रेजी शिक्षा के विस्तार को लेकर राममोहन में अदम्य साहस था। उन्होंने उस स्कूल का नाम रखा– 'एंग्लो हिंदू स्कूल।' लेकिन विद्यार्थी ही नहीं थे।

उन्होंने उसमें अपने ही बेटे को भर्ती करा दिया। नंदकिशोर बसु के बेटे राजनारायण बसु का दाखिला भी इसी स्कूल में हुआ। द्वारिकानाथ ठाकुर भी अपने बेटे देवेंद्रनाथ ठाकुर को लेते आए। इसी तरह इधर-उधर से कुछ-कुछ छात्र और इकट्ठे हो गए। फिर उन्हीं के साथ शुरू हुई, राममोहन की यूरोप के ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा। और हिंदू-मुसलमान-ईसाई-बौद्ध सबके सम्मिलन से यहां पर एक मिश्रित भाषा का उच्चारण देखने को मिला।

एक दो छात्रों को लेकर शुरू हुआ था स्कूल, लेकिन और भी बच्चे चाहिए थे। अगर और बच्चे स्कूल में नहीं आएंगे तो सबके पास तक शिक्षा का प्रचार-प्रसार कैसे संभव हो पाएगा? नए जमाने की बात तो सभी को बतानी है। ताकि मनुष्य अपनी अंजुरी से भरकर ज्ञान ग्रहण कर सके। इस शिक्षा से विद्यासागर उस समय भी दूर ही थे। उन्हें दूर से नजदीक लाने की तैयारी करनी होगी तभी रातोंरात दस, पचास, सौ स्कूल खड़े हो सकते हैं।

कलकत्ता के चर्च ऑफ स्कॉटलैंड के बिशप रेवारेंड ब्राइस राममोहन के दोस्त थे। राममोहन ने ब्राइस के साथ शिक्षा प्रसार के संदर्भ में बात की। ब्राइस ने स्कॉटलैंड से अलेग्जेंडर डफ को बुलाया।

डफ आ तो गए, लेकिन वे स्कूल के लिए घर का इंतजाम नहीं कर पाए। क्योंकि डफ तो ईसाई थे। उन्हें घर देता भी तो कौन? डफ के साथ संपर्क बढ़ाने में किसी को तो डर भी लगता। ईश्वरचंद गुप्त ने तो यहां तक कहा था कि 'अगर डफ सब को ईसाई बना देंगे तो?' डफ को घर नहीं मिला।

राममोहन इसके लिए आगे आए। उन्होंने घर का इंतजाम कर दिया। किंतु ईसाई बना देने के डर से स्कूल में छात्र दाखिला ही नहीं लेते। तो डफ पढ़ाते किसको? तब फिर से डफ ने एक बार राममोहन से संपर्क साधा। मुश्किल आसान हो गई। राममोहन ने अभिभावकों को समझाया-बुझाया, अनुरोध किया तो धीरे-धीरे छात्रों की संख्या बढ़ने लगी। उसके बाद तो साल दर साल झुंड के झुंड छात्र और छात्राएं आने शुरू हो गए। उसी स्कूल का नाम बाद में चल कर 'स्काटिश चर्च कॉलेज' नाम पड़ा। राममोहन हार मानने वालों में से नहीं थे। इस क्षेत्र में तो वे विजयी हो चुके थे। राममोहन अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार में किस तरह इतना आगे निकल गए यह देखने लायक बात है। देश में चारों तरफ अंधकार का वातावरण था। इस अंधकार को दूर करने के लिए अंग्रेजी शिक्षा की बहुत जरूरत है, क्योंकि संस्कारों के मोहपाश में जकड़े लोगों को मुक्त कराने के लिए अंग्रेजी शिक्षा बहुत जरूरी है, ऐसा उन्होंने प्रचार किया।

इसी बीच एक घटना घट गई। बनारस में सरकार की तरफ से एक संस्कृत कॉलेज की स्थापना की गई। सरकारी पंडितों की सहायता से संस्कृत कॉलेज चल पड़ा। राममोहन इससे विचलित हुए। उन्होंने 1828 में लार्ड हामहार्स्ट से इसके ख़िलाफ़ प्रतिक्रिया व्यक्त की। इस प्रतिक्रिया स्वरूप लिखी गई चिट्ठी में उन्होंने जो

बात लिखी थी वह काफी महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने बताया था कि संस्कृत की शिक्षा बहुत कठिन है। इस शिक्षा को ग्रहण करने में आदमी की पूरी ज़िंदगी ही निकल जाती है। तो फिर ऐसी पढ़ाई से क्या विकास हो पाएगा? व्याकरण के विद्वानों का कहना है कि व्याकरण सीखने में कम से कम बारह साल तो लग ही जाते हैं। इस तरह समझा जा सकता है कि किताबी पढ़ाई से तरक्की संभव नहीं है।

राममोहन ने एक और विश्वास के साथ चोट किया। उन्होंने कहा कि वेदांत, मीमांसा अथवा न्यायशास्त्र की पढ़ाई से कोई भला होने वाला नहीं है। संस्कृत की पढ़ाई से देश का अंधकार बना ही रहेगा।

इसकी उपयोगिता क्या है? केवल तत्त्व नहीं बल्कि यह किसी काम में कितना सहायक है, रास्ता चलते इससे कितनी मदद मिल सकती है, यह देखना होगा। क्या यह गणित, भौतिकी रसायन अथवा जीवविज्ञान की तरह उपयोगी है? इसका उदाहरण हैं यूरोप, जिसने इन विषयों पर अधिकार प्राप्त कर लिया है। इसलिए अगर इस देश को भी ऐसे ही तरक्की करनी है तो इन्हीं सब ज्ञान-विज्ञान की पढ़ाई करनी होगी।

राममोहन काशी के पंडित तो नहीं थे, लेकिन संस्कृत के विद्वान जरूर थे। उन्होंने वेदांत की आलोचना की। इसीलिए उन्होंने इस चिट्ठी में इस पढ़ाई को बहुत महत्त्व नहीं दिया। यह आश्चर्य की बात है। विद्यासागर ने भी संस्कृत भाषा की पढ़ाई में आने वाली कठिनाइयों को समझाया था। बारह वर्ष में प्राप्त की जाने वाली शिक्षा की अवधि कम कैसे की जाए, उसके लिए काफी उपाय किए और 'उपक्रमणिका' की रचना की। राममोहन ने उनसे ऐसी उम्मीद नहीं की थी।

10

यहां पर रवींद्रनाथ की कहानी 'महामाया' की याद आ रही है, जिसके साथ राजीव शादी करना चाहता था। एक दिन महामाया के पिता ने राजीव और महामाया को एक साथ देख लिया। उन्हें शक हुआ। उसी रात उसके पिता ने उसकी शादी एक मृत्यु का इंतजार कर रहे बूढ़े से कर दी। बूढ़े का देहांत हो गया। बूढ़े की चिता में महामाया को भी हाथ-पांव बांधकर डाल दिया गया। आग जल उठी। महामाया आर्तनाद कर उठी। आग से जलकर उसके हाथ का बंधन खुल गया और पांव का बंधन खोलकर वह चिता से बाहर निकल आई। चेहरा उसका झुलस गया था। सुंदर महामाया का चेहरा कुरूप हो गया। दुःखी महामाया एक दिन दुनिया से विदा हो गई।

यही हमारा सतीदाह है। महामाया तो उठकर आ भी पाई थी, किंतु कितनी सारी अभागी स्त्रियों की चीत्कार तो उसी चिता की लपटों में खो गई थी। पीड़ा के मारे जब स्त्री चिल्लाती तो उसकी आवाज को दबाने के लिए खूब जोर से ढोल मजीरा बजाया जाता। ब्राह्मण, पुरोहित चिता के पास होते। कभी-कभी तो उस लड़की के मां-बाप भी चिता के पास खड़े हो कर आंसू बहाते रहते। लेकिन लगभग सभी ने इस स्त्री की दशा को स्वीकार कर लिया था। यह मान्यता थी कि सती होने पर स्त्री को स्वर्ग की प्राप्ति होती है।

लेकिन राममोहन राय ने इस बात को स्वीकार नहीं किया। जिस तरह उन्होंने धर्म की आलोचना की थी, उसी तरह तर्क और बुद्धि के द्वारा समझाने की कोशिश की, कि यह जो स्वर्ग की कामना है वह नारी के ऊपर अत्याचार है, और कुछ नहीं। समाज के इस पाप को दूर करना होगा। दूर करने के लिए शास्त्रों पर विचार करना



होगा। शास्त्रों की आलोचना के द्वारा ही इस अत्याचार, इस पाप के बारे में लोगों को आसानी से समझाया जा सकता है।

राममोहन ने देखा कि इस जघन्य प्रथा की ख़िलाफ़त करने वाले लोग इस देश में हैं। और वे इसका विरोध भी करते हैं। अगर कोई स्त्री अपने पति के साथ अपनी मर्जी से चिता में चली जाती है, तब तो कुछ नहीं कहा जा सकता। लेकिन कौन आग में अपनी इच्छा से कूदना चाहेगा, भला? जबरदस्ती बांधकर, बांस से पीट कर चिता में मार डालने की प्रथा थी। और मिशनरी के लोगों ने इसे लक्ष्य बनाया और स्वयं लार्ड वेलेजली द्वारा इसे रोकने की कोशिश के बावजूद यह प्रथा कम होने की बजाय बढ़ती ही जा रही थी। 1815 में 253, 1816 में 269, 1817 में 442 और 1818 में 544

महिलाओं के सती होने के मामले प्रकाश में आए, लेकिन यह सिर्फ सरकारी आंकड़ा है। इसके अलावा गांवों मुहल्लों में ऐसी कितनी असहाय महिलाएं सती हो चुकी थीं।

महिलाओं की तो हमने कभी मनुष्य में गणना की ही नहीं। तो फिर उन्हें जबरदस्ती मार डालने की जरूरत ही क्या है? महिलाओं को तो हम निम्न कोटि का प्राणी मानते आए हैं कि उनमें बुद्धि नहीं होती। फिर विधवा होकर जिंदा रहने से क्या लाभ? उन्हें जबरदस्ती जलाकर मार डालना ही उचित है। उन दिनों लोगों में इसी तरह की धारणा देखने को मिलती थी। और वह भी भारत में ऐसा हो रहा था, और कुछ लोग तो महिलाओं को सती होते देखने के लिए काफी उत्साहित रहते थे।

राममोहन विशेषरूप से नारीवादी थे। विद्यासागर की तरह ही स्त्री को दुःखी देखकर उनकी आंखें भर आती थीं। उन्होंने शास्त्रों से उदाहरण जुटाकर यह दिखाने की कोशिश की कि नारी के सती होने का कहीं कोई विधान नहीं है। उन्होंने इसके लिए 1818 में 'सतीदाह के संबंध में प्रवर्तक संवादः सतीदाह प्रसंग' नाम से एक पुस्तक की रचना की। राममोहन ने सिद्ध कर दिया है कि अगर शास्त्रों का गहराई से अध्ययन किया जाए तो उनमें कहीं भी सतीदाह का प्रावधान नहीं है।

जिन दिनों राममोहन ने इस तरह के विचार प्रकाशित किए थे। उन्हीं दिनों विलियम बेंटिक गवर्नर जनरल बनकर आए थे। सतीदाह के संदर्भ में राममोहन के विचारों से वे परिचित हुए। उनके देश में भी सतीप्रथा के विरोध में जनमत था। और जब यहां आकर उन्होंने अपनी आंखों से यह सब देखा तो वे चकित रह गए। उन्होंने राममोहन से सहयोग मांगा, ताकि कानून बनाकर इस प्रथा को बंद

किया जा सके। राममोहन ने भी वेंटिक और कई दूसरे लोगों को इस कुसंस्कार के ख़िलाफ़ सचेत कर दिया था।

उनके विचारों को गहराई से देखें तो समझ में आता है कि वे सतीप्रथा को किसी अलग समस्या के रूप में नहीं देखते थे। नारी अधिकारों के हनन के साथ ही यह भी समस्या जुड़ी हुई थी। उन्होंने शास्त्रों का हवाला देते हुए यह सिद्ध किया कि प्राचीन ग्रंथों में नारी को न्याय पाने का पूरा-पूरा अधिकार है। याज्ञवल्क्य, नारद, विष्णु, बृहस्पति, व्यास सभी ने कहा कि पति की मृत्यु के पश्चात मां को बच्चे के साथ संपत्ति पर समान अधिकार मिलना चाहिए। इतना ही नहीं मनु ने भी नारी के अधिकारों को स्वीकार किया था। जीवित अवस्था में पति वसीयत लिखता है तो वह स्त्री को अपने अधिकारों से वंचित नहीं कर सकता। यह तो हुआ मां का संपत्ति पर अधिकार। लेकिन, राममोहन ने देखा कि मनु ने कहीं भी सौतेली मां के अधिकारों की कोई बात नहीं लिखी है।

राममोहन ने देखा कि स्त्री को उसके अधिकारों से वंचित रखने की परंपरा धीरे-धीरे जटिल होती जा रही है। पुत्र होने के बाद भी स्त्री का संपत्ति पर कोई अधिकार नहीं रहता। बेटे के बेटे तो संपत्ति का अधिकार पा सकते हैं, किंतु मां को कोई अधिकार नहीं है। मां को बेटे पर आश्रित रहना होगा। अगर बेटा कुछ खाने-पहनने को दे देता तो ठीक है, नहीं तो उपवास। मतलब दासी बनकर रहना। सौतेली माताओं के बारे में किसी-किसी शास्त्र में तो इनकी संख्या सौ से भी ऊपर पहुंच चुकी है। तो किन्हीं शास्त्रों में कहीं कोई बात लिखी ही नहीं है।

विडंबना सिर्फ विडंबना। स्त्री को कुछ भी पाने का अधिकार नहीं। इसका परिणाम क्या निकला? वही जो कभी घर की मालकिन

हुआ करती थी, कुछ समय बाद ही घर की दासी बन कर रह गई। अथवा किसी और की शरण में काफी कष्ट उठाते हुए जीवन बिताने पर मजबूर हो गई। सतीदाह के पीछे भी यही विडंबना रही है। किसी धार्मिक कारण से सतीदाह नहीं किया जाता। बेटे से मिली रुसवाई ननद से मिले ताने और भविष्य को लेकर उत्पन्न हताशा, इन्हीं सब कारणों से स्त्री सतीदाह की तरफ जाने को मजबूर हुई।

राममोहन ने इस बार शिक्षित बंगालियों को बहुविवाह के कुपरिणामों की तरफ प्रकाश डालते हुए समझाने की कोशिश की। हिंदूकुलीन ब्राह्मण बिना सोचे-विचारे एक के बाद एक शादियां करते जाते। छोटे-मोटे कारणों से भी घर में स्त्री होने के बावजूद दूसरी शादी करते जाते। प्रायः अपनी बर्बर भूख मिटाने के लिए ही शादी के मंडप में बैठ जाया करते। इसका परिणाम यह होता कि पति की मृत्यु के बाद विधवाएं खरीदी हुई दासियों की तरह जीवन बिताने को मजबूर होतीं। ये बाध्य होकर जीने के लिए किसी दूसरे पुरुष की सहायता चाहतीं। इस तरह समाज उन्हें गलत रास्ते पर चलने को भी मजबूर करता और तीसरा रास्ता होता, पति की चिता में जलकर जीवन का त्याग कर देने का। लेकिन शर्म की बात तो यह है कि इस सतीदाह संबंधी आत्मीय लोग महान मृत्यु की संज्ञा देते और आनंद और उल्लास से मग्न हो उठते। क्या पता कितनी महिलाएं तो इसी तरह से आत्महत्या कर लेतीं। राममोहन ने दिखाया कि बंगाल में उन दिनों सबसे अधिक इस तरह की आत्महत्या की घटनाएं हुईं। जो लोग सतीप्रथा को शास्त्र सम्मत मानते थे, उन लोगों को राममोहन ने याज्ञवल्क्य का उदाहरण देते हुए बताया कि यह एकदम से गलत धारणा नहीं है। आश्चर्य की बात तो यह है कि राममोहन ने शास्त्रों की बातों का उल्लेख करते हुए उसी समय

यह दिखा दिया था कि दहेज प्रथा के कारण ही हिंदू स्त्रियों की इतनी बुरी दशा है, और उसके दुष्परिणाम घटित होते हैं। लड़की के पिता को दुःख से मुक्ति पाने का कोई उपाय नहीं था। अधिकांश क्षेत्रों में तो आज भी यह परंपरा बरकरार है।

राममोहन ने इस तरह की प्रथाओं पर रोक लगाने के लिए सरकार के पास आवेदन किया था जिसमें कि नारी की मुक्ति संभव हो सके। राममोहन इस प्रथा को सर्वनाशी कहते थे और उन्होंने इस की ख़िलाफ़त के लिए कमर कस ली।

इसी समय वेंटिक इस देश में आए। उन्होंने न सिर्फ राममोहन का लिखा हुआ पढ़ा बल्कि उनसे मिलकर बातचीत भी की। उन्होंने निश्चय किया कि सती प्रथा के खिलाफ कानून बनना चाहिए।



पुरातनपंथी समाज की स्थिति उन दिनों काफी दयनीय थी। भवानीचरण बंद्योपाध्याय की 'समाचार चंद्रिका' पत्रिका में इस कानून के प्रस्ताव के ख़िलाफ़ काफी लिखा जाने लगा। उन लेखों में ज्यादातर हिस्सा निश्चितपूर्ण आक्षेपों से भरा होता। उन लोगों ने वेंटिक को आवेदन किया कि वे इस बहकावे में न आएं। जैसे वेंटिक हिंदुओं के हिंदुत्व को चूर-चूर करने पर तुल गए हों। दूसरी तरफ राममोहन के समर्थन में गौरीशंकर तर्कवागीश आगे आए। राममोहन के अपने समर्थक तो थे ही, इस तरह कलकत्ते के अंदर एक बार फिर से एक जबरदस्त तूफान उठ खड़ा हुआ था। इसी तरह का तूफान एक बार तब भी खड़ा हुआ था जब विद्यासागर ने विधवा विवाह के लिए कानूनी मान्यता प्राप्त कर ली थी। बंगाल में इसी तरह धीरे-धीरे प्रगति आंदोलन आगे बढ़ता गया। और इसी तरह नारी के भाग्य का रास्ता भी धीरे-धीरे खुलता गया।

पुरातनपंथी हार गए। राममोहन विजयी हो गए। 1829 में सतीप्रथा निवारण कानून पास हो गया।

हिंदू समाज के राजा, महाराजा तथा, भाटपाड़ा के सभी पंडित इसके ख़िलाफ़ उठ खड़े हुए। उन लोगों ने आठ सौ लोगों के हस्ताक्षर इकट्ठे किए। कानून पास हो जाने के बाद भी विदेश में जाकर इसके ख़िलाफ़ प्रिवी काउंसिल में दरखास्त दे आए। इन विरोध करने वालों में राधाकांत देव, महाराजा गोपी कृष्ण, हरनाथ तर्कभूषण, दीवान रामकमल सेन, भवानी चरण बंद्योपाध्याय आदि प्रमुख थे। भवानी चरण ने 'सर्वधर्म, सदाचार और सद्भावना रक्षार्थ' समिति की स्थापना की और राममोहन की जोर-शोर से आलोचना शुरू कर दी। इस समिति की स्थापना ही सतीप्रथा उन्मूलन कानून के विरोध में हिंदुओं को एक जुट करने के लिए हुई थी। इस समिति का

उद्देश्य नास्तिकों को दंडित करना भी था। लेकिन राममोहन इससे पहले ही 'ब्रह्म सभा' (1828) की स्थापना कर चुके थे। लेकिन 'धर्म सभा' के सदस्य इस सभा के लोगों को नास्तिक कहते थे।

प्रिवी काउंसिल में किसे भेजा जाए? 'धर्म सभा' ने तय किया कि अटार्नी फ्रांसिस बेथिक को भेजा जाए। किंतु उसके लिए पैसे चाहिए थे। और ऐसे शुभ कार्य के लिए पैसे मिलने भी तो मुश्किल थे। लेकिन चंदा लेकर बीस हजार रुपए इकट्ठे हो गए। जोर-जबरदस्ती से भी चंदा इकट्ठा किया गया। इतने से ही वे लोग शांत नहीं होने वाले थे। राममोहन की हत्या के लिए बदमाशों को तैयार किया गया। गुंडे राममोहन की हर गतिविधियों पर नजर रखते। देखते कि राममोहन और क्या करने जा रहे हैं। राममोहन की सुरक्षा की व्यवस्था कौन देखता? वे खुद ही अपने साथ एक गुप्ती रखने लगे। उनको खुद पर काफी भरोसा था, और उनका शरीर तो स्वस्थ था ही। उनके घर के चारों ओर विरोधी गीत गाते फिरते थे कि 'जातेर निकेश राममोहन, वियेर निकेश करेछे।' राममोहन इस तरह के गीतों से विचलित नहीं हुए। लेकिन वे सतर्क हो गए और पुलिस की सहायता उन्हें लेनी ही पड़ी।

इस विषय में 'ब्रह्मसभा' के सदस्य भी चुप नहीं बैठे रहे। उन्होंने राममोहन को विदेश भेजने की व्यवस्था कर ली। द्वारिकानाथ ठाकुर ने राममोहन को पांच हजार रुपए देना चाहा, लेकिन अब समय नहीं था। फ्रांसिस बेथिक विदेश के लिए रवाना हो चुके थे। राममोहन को मित्र की दिलेरी पर काफी खुशी हुई, लेकिन उन्होंने पैसा नहीं लिया, उन्होंने 'ब्रह्म सभा' को वह पैसा दान कर दिया। उन्होंने तय किया कि अगर कभी जाएंगे तो अपने ही पैसे से जाएंगे।

लेकिन उस वक्त राममोहन के पास इतने पैसे नहीं थे। जिस

समय राममोहन पैसे की व्यवस्था को लेकर चिंतित थे उसी समय एक सुयोग घटित हुआ।

तब तक ईस्ट इंडिया कंपनी ने भारत में लगभग स्थायी रूप से अपना शासन शुरू कर लिया था। लेकिन दिल्ली में अभी भी एक बादशाह था-अकबर द्वितीय। अकबर द्वितीय ने अपने कुछ दावे के साथ ईस्ट इंडिया कंपनी के पास एक आवेदन भेजा। लेकिन उसे रद्द कर दिया गया। इसलिए उन्होंने इंग्लैंड में राजा के दरबार में अपना एक दूत भेजने का मन बनाया।

इस तरह के काम के लिए उन दिनों भारत में राममोहन ही सबसे उपयुक्त व्यक्ति माने जाते थे। बुद्धि में, सवाल-जवाब में, अंग्रेजी बोलने वाला इतना चतुर कोई नहीं था। अकबर ने राममोहन को 'राजा' की उपाधी देकर विदेश भेजना चाहा। राममोहन ने उनका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। विदेश जाने की तो उनकी बहुत समय से इच्छा थी। वहां भी तो उनके भाई-बंध रहते थे।

उन्हें याद थी वह घटना जब उनके भाई का देहांत हुआ था तब उनकी चिता में उनकी भाभी को भी बिठा दिया गया था। वे उस निष्ठुर घटना के प्रत्यक्ष गवाह थे। कुछ दिनों के भीतर ही प्रिवी काउंसिल में सतीप्रथा उन्मूलन के प्रस्ताव पर बहस होने वाली थी। वे उस समय वहां उपस्थित रहना चाहते थे। चाहे जिस भी तरह हो पुरातनपंथियों द्वारा नारी हत्या की घटनाओं को रोकना ही होगा, अब देर करने से फायदा नहीं होगा।

राममोहन विदेश जाने के लिए तैयार हो गए। लेकिन ईस्ट इंडिया राममोहन को राजा मानने को तैयार नहीं थी। दिल्ली के बादशाह तो सिर्फ नाममात्र के थे, इसलिए वे उन्हें स्वीकार नहीं कर रहे थे।

राममोहन ने कंपनी के शासन को स्वीकार कर लिया। उन्होंने

तय कर लिया कि आम आदमी की तरह वे विलायत जाएंगे। अकबर द्वितीय द्वारा दी गई राजा की उपाधि कंपनी ने नहीं मानी तो क्या हुआ, कमजोर और दुःखी लोगों के लिए तो राममोहन, राजा ही थे।

लेकिन कंपनी की तरफ से बाधा डालने की खबर पाकर विरोधी चुप कैसे बैठ सकते थे। उन्होंने कहा कि राममोहन विदेश जाकर हमारी बराबरी करना चाहते हैं। इस तरह के ताने पुरातनपंथी उन्नीसवीं सदी के आखिरी दिनों तक देते रहे, लेकिन इससे राममोहन का जाना नहीं रुका। राममोहन भी विचलित नहीं हुए। राममोहन और भी सतर्क हो गए। यूरोप जाकर इंग्लैंड के राजा को भारत के संबंध में और भी बहुत सारी बातें उन्हें बतानी थीं। भारत दूत के रूप में राममोहन तैयार हुए। वे भारत की बात को विलायत मे पहुंचाना चाहते थे।

उधर धर्म सभा के प्रतिनिधि बेथिक का जहाज तूफान में डूब गया। बेथिक तो बच गए, मगर उनका सारा कागज-पत्र बह गया। सुनकर राममोहन व्यंग्य से मुस्करा पड़े।

11

1930 में नवंबर के महीने में 'आलविन' नामक जहाज से राममोहन इंग्लैंड की यात्रा पर रवाना हो गए। उनके साथ रामरतन मुखोपाध्याय, पालित पुत्र राजाराम और दो नौकर-रामहरिदास और अलीबख्श गए।

भारतवर्ष की धरती से आखिरी कदम उठाते हुए राममोहन जहाज में बैठे और बैठे-बैठे भारत के दुःख-दर्द के बारे में सोचते चले गए।

और वे तर्कशील, यथार्थ बुद्धि संपन्न हैं, इसलिए वे इस सबका इस्तेमाल करते हुए वहां तर्कों से अपनी बात लिखेंगे, कहेंगे, ऐसा उन्होंने संकल्प लिया। जहाज में उन्हें जब भी समय मिला पढ़ने लिखने का ही काम किया। यूरोप जाकर क्या बोलना है, उस सबकी तैयारी उन्होंने कर ली।

पढ़ाई और पढ़ाई। वे खूब पढ़ते थे। यह सब तो हमें भी मालूम है। एक बार एक पंडित ने राममोहन के साथ तंत्र पर बहस करने की इच्छा प्रकट की। राममोहन ने उससे एक दिन का समय मांगा। उन्होंने तंत्र पर एक भी किताब नहीं पढ़ी थी।

उसी दिन वे शोभा बाजार के राजबाड़ी से तंत्र पर एक किताब खरीद लाए। पूरी रात मेहनत करके उन्होंने उस किताब को पढ़ा। वे इस तरह के कुशाग्र बुद्धि थे। विदेश जाते समय भी रास्ते में उनके पढ़ने की रफ्तार इसी तरह की थी। पता नहीं जहाज में उनके साथ विभिन्न विषयों पर वाद-संवाद करने वाले मित्र बने थे कि नहीं।

तब जहाज से इंग्लैंड पहुंचने में काफी समय लगता था। जहाज केपटाउन आ पहुंचा था। यहां पर एक छोटी सी दुर्घटना घट गई। गिर जाने के कारण राममोहन का एक पैर टूट गया। इस टूटे हुए पैर के कारण उन्हें काफी परेशानी होती। उस कष्ट को राममोहन के लिए बर्दाश्त करना बहुत मुश्किल पड़ रहा था। केपटाउन में ही एक और घटना घटी। उन्होंने देखा कि दो फ्रांसीसी, जहाजों के ऊपर तिरंगा झंडा फहरा रहे थे। राममोहन यह देखकर बहुत प्रसन्न हुए, जैसे उनके सपनों का जहाज हो। स्वाधीनता, समानता और मैत्री की पताका। राममोहन टूटे पैर लिए ही उनमें से एक जहाज पर आ गए। राममोहन अपने शरीर का कष्ट भूल गए। उन्होंने

आंदोलनकारी झंडे के आगे श्रद्धावनत हो अभिनंदन किया। फ्रांस को अभिनंदन करने से उनका तात्पर्य भारतीय आंदोलन को अभिनंदन करना था। कभी-कभी आंदोलन भी होता रहना चाहिए, इस सच्चाई को उन्होंने स्वीकार कर लिया था।

राममोहन से संबंधित एक और स्मरणीय घटना का यहां जिक्र करना उचित जान पड़ता है। राममोहन के सिल्क बंकिघम नाम के एक दोस्त थे। 1821 के अगस्त महीने में उन्होंने एक भोज का आयोजन किया था। उसमें राममोहन भी आमंत्रित थे। लेकिन वे जा नहीं पाए।

उस दिन राममोहन को बहुत बुरी खबर मिली थी।

आस्ट्रिया ने इटली पर आक्रमण करके इटली की स्वाधीनता छीन ली थी। राममोहन एकदम टूट गए थे। उन्होंने सिल्क बंकिघम को चिट्ठी लिखी—'इस दुनिया में स्वाधीनता के दुश्मन और निर्दयी राजतंत्र की बहुत दिनों तक नहीं चलने वाली।' और उन शत्रुओं के प्रति राममोहन के मन में भयानक घृणा भर गई थी। जहां भी उन्हें स्वाधीनता की किरण दिखाई देती वहीं वे आगे आ जाते। 1823 में जिस दिन दक्षिण अमेरिका के उपनिवेशों को स्पेन की दासता से मुक्ति मिली उस दिन राममोहन ने एक बड़े भोज का आयोजन किया था। और उसमें दक्षिण अमेरिका के आजाद हुए देशों के प्रति अभिनंदन व्यक्त किया गया। राममोहन के यूरोपीय मित्र इस घटना से आवाक रह गए। उन्होंने राममोहन से पूछा कि दक्षिण अमेरिका के मुक्त हुए देशों को लेकर आप क्यों इतने खुश हो रहे हैं? आपका तो उनसे कोई संपर्क भी नहीं है। राममोहन दहाड़ उठे, 'What ought to be insensible to my follow creatures wherever they are, or however unconnected by interest religion or languages'

आंदोलनकारियों के प्रति राममोहन की आत्मीयता उस दिन इस रूप में प्रकट हुई थी। उस दिन इस तरह से भारत के साथ विश्व का संयोग घटित हुआ था। इसे ही 'विश्व प्रेम' कहते हैं। काफी दिनों बाद श्रमिक संगठनों के प्रतिनिधियों ने इसी तरह विश्व के निर्यातित लोगों की एकता की बात उठाई थी। राममोहन की बात इस तरह की सोच का अग्रिम संकेत थी।

8 अप्रैल 1831 को राममोहन लिवरपूल पहुंचे।

वहां पर राममोहन के स्वागत के लिए घाट पर बहुत से लोग आए थे। लिवरपूल में उनके स्वागत के लिए काफी भीड़ जुटी। इस भारी भीड़ को देखकर आसानी से अंदाजा लगाया जा सकता था कि राममोहन इंग्लैंड में कितने चर्चित हो चुके थे।

सुविख्यात इतिहासकार विलियम रस्को लिवरपूल में रहते थे। वे राममोहन की विद्वता से काफी प्रभावित थे। राममोहन की बुद्धि और विचारों ने उन्हें काफी प्रभावित किया था। जब लिवरपूल से टमास डायसन भारत जा रहे थे, तब रस्को ने उनके हाथ राममोहन के नाम की चिट्ठी दी थी। लेकिन वह चिट्ठी राममोहन को नहीं मिल पाई थी, क्योंकि तब तक राममोहन जहाज पर चढ़कर रवाना हो चुके थे। रस्को ने उस चिट्ठी में राममोहन के प्रति श्रद्धा निवेदित की थी। राममोहन को जितनी निंदा मिली थी, उस की अपेक्षा इज्जत भी काफी मिली थी।

राममोहन के लिवरपूल पहुंचने पर रस्को ने उन्हें अपने यहां आमंत्रित किया। राममोहन के प्रति श्रद्धा व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा था कि ईश्वर को बहुत-बहुत धन्यवाद, जो उसने राममोहन के प्रति श्रद्धा व्यक्त करने के लिए मुझे जिंदा रखा। कितनी असीम श्रद्धा थी उनके इस प्यार में! राममोहन ने सहज भारतीय ढंग से

उनसे कहा, 'जिसकी ख्याति पूरी दुनिया में फैली हो उससे मिलकर मुझे काफी खुशी और गर्व महसूस हो रहा है।' रस्को उस समय रोगशय्या पर पड़े थे। पूरब और पश्चिम के इस मिलन को भला कौन भूल पाएगा?

उन्होंने घूम-घूमकर मानचेसटर के कल-कारखाने देखे। राममोहन को देखकर कल-कारखानों के कुली, मजदूर भी काफी खुश हुए। उन्होंने राममोहन के प्रति श्रद्धा व्यक्त की। भारत के इस देदीप्यमान व्यक्ति को देखने के लिए हजारोंहजार लोग भागते हुए आए।

लिवरपूल से राममोहन इंग्लैंड चले गए। रास्ते में जहां-जहां मौका मिला दर्शनार्थियों ने राममोहन के प्रति श्रद्धा व्यक्त की। लंदन में रीजेंट स्ट्रीट पर उन्होंने किराए का घर लिया। पूरे शहर में जैसे राममोहन को देखने की उत्तेजना थी। सुबह 11 बजे से लेकर शाम के 4 बजे तक राजनेता, साहित्यकार, वैज्ञानिक, दार्शनिक से लेकर आम लोगों तक की राममोहन के घर में भीड़ लगी होती।

यहां पर एक अद्‌भुत घटना घटी। कुछ दिनों के लिए राममोहन बंड स्ट्रीट के एक होटल में ठहरे थे। एक दिन आधी रात के वक्त अचानक विख्यात दार्शनिक जेरेमी बेंथम उपस्थित हो गए। तब तक बेंथम का नाम पूरी दुनिया में जाना जाने लगा था। हमारे देश में भी कुछ-कुछ लोग उनके लेखन से परिचित हो चुके थे। बंकिमचंद्र तो बेंथम से काफी प्रभावित थे यह बात सभी को मालूम है। राममोहन भी उनके विचारों से परिचित थे। दुनिया में सुख का तात्पर्य क्या है, उस पर बेंथम ने लिखा था। राममोहन जिस समय लंदन पहुंचे थे बेंथम काफी बूढ़े हो चुके थे। किसी से भी विशेष मिलने-जुलने नहीं जाते थे। लेकिन वे राममोहन से मिलने के लिए भागे हुए आए।

यूरोप के बड़े-बड़े विद्वानों ने राममोहन को सम्मानित करने का

आग्रह किया। इंग्लैंड के राजा के भाई ड्यूक ऑफ कांबारलैंड ने राममोहन को हाउस ऑफ लार्डस की कानूनी प्रक्रिया से परिचित करा दिया। राममोहन ने उनसे आग्रहपूर्वक कहा कि टोरी के सदस्य बिल के विरोध में वोट न दें। ब्राहम, जिन्होंने दासप्रथा को खत्म करने के लिए आंदोलन खड़ा किया था, के साथ राममोहन की दोस्ती हो गई। ब्राहम के साथ उनकी दोस्ती का एक दूसरा कारण यह भी था कि वे जन शिक्षा प्रसार के प्रति भी संकल्पबद्ध थे, इसलिए ब्राहम का खिंचे चले आना तो स्वाभाविक था। 5 जुलाई 1831 को ईस्ट इंडिया कंपनी के निर्देशकों ने राममोहन को रात्रि भोज पर बुलाया। भारत में तो इस कंपनी ने राममोहन की 'राजा' की उपाधि को स्वीकार ही नहीं किया था। उन्होंने राममोहन के भारतीयों के प्रति की गई सेवाओं और योगदान को ही स्मरण योग्य स्वीकार किया था। जिस तरह मधुमक्खी घूम-घूमकर फूलों से पराग इकट्ठा कर शहद संचय करती है, उसी तरह राममोहन ने अपने भ्रमण और अध्ययन के द्वारा ज्ञान रूपी शहद का संचय किया था। कंपनी के चेयरमैन ने कहा था कि, 'राममोहन की बुद्धि का कोई जवाब नहीं है।'

चौथे विलियम के अभिषेक के समय राममोहन को यूरोप के राज्याधिकारियों और मजदूरों के साथ बिठाया गया था। राममोहन ने वहां पर एक प्रस्ताव पत्र पढ़ा। इस ज्ञान-तपस्वी के प्रति श्रद्धा व्यक्त करने के लिए राममोहन के लिए यह सबसे उपयुक्त अवसर था। उन्होंने मानवतावादी, समाजसेवी राबट आवेन के साथ मुलाकात की। राममोहन सिर्फ भारत के ही नहीं, बल्कि सबके लिए महत्वपूर्ण थे। उन्होंने इंग्लैंड प्रजामंडल में रिफार्म बिल का समर्थन किया। यह बिल कामन्स सभा में पास हो जाने के बाद लार्डस सभा के

समक्ष रखा गया। तब वहां के लोग अधीरता से इसके पास होने का इंतजार कर रहे थे। उस वक्त राममोहन वहीं थे वे भी उत्तेजित हो उठे थे। बिल पास हो गया! तब राममोहन की खुशी का ठिकाना न था। उन्होंने अपनी खुशी को प्रकट करते हुए लार्ड राथबोन को चिट्ठी लिखी।

ब्रिटिश सरकार ने एक और भूल सुधार ली। उसने राममोहन की राजा की उपाधि को स्वीकृति प्रदान कर दी। ईश्वर भी कैसा-कैसा मजाक करता है। राजा के प्रति सम्मान प्रकट न करने से जैसे यूरोप के शिक्षित और राजनैतिक लोगों को शांति ही नहीं मिंलती। राजा विलियम ने उनसे मिलने की स्वीकृति दे दी। लंदन में एक पुल का उद्घाटन किया जाना था। इस अवसर पर राममोहन को आमंत्रित किया गया।

वहां राममोहन के सम्मान में एक के ब्राद एक सभाएं आयोजित की गईं। इसी तरह की एक सभा में जेरेमी बेंथम भी उपस्थित थे। लंदन के यूनीटेरियन एसोसिएशन ने तो बड़े भव्य तरीके से राममोहन को सम्मानित किया। इस सभा में डा. बाउरिंग भी उपस्थित थे। उन्होंने राममोहन के बारे में बोलते हुए उनकी तुलना प्लेटो, सुकरात, मिल्टन और न्यूटन आदि के साथ की। उन्होंने कहा कि 'हजार-हजार साल पहले पैदा हुए इन महापुरुषों को पढ़कर जिस तरह हम गर्व का अनुभव करते हैं, उसी प्रकार हजारों मील दूर से आए इस महापुरुष को पाकर हम खुशी का अनुभव कर रहे हैं। डा. वाउरिंग के इस कथन से भारत भी दुनिया के श्रेष्ठ देशों की श्रेणी में आ खड़ा हुआ। अमेरिका के हारवर्ड विश्वविद्यालय के सभापति भी उस सभा में उपस्थित थे। उन्होंने राममोहन को अमेरिका आने का न्यौता दिया।

राममोहन अभिभूत थे। विचारों की विदेश में जो कद्र थी उसे देखकर वे आनंदित थे। इस तरह हम उनके संबंध में कह सकते हैं कि विचारबुद्धि के साथ शास्त्र से, सहज बुद्धि के साथ व्यावहारिकता से और शक्ति के साथ संस्कारों से लड़ाई लड़कर बाहर निकल आए थे और अब उन्हें इस बात का यकीन हो गया था कि आज नहीं तो कल उन्हें सफलता तो मिलनी ही है। इससे राममोहन के आत्मविश्वास का पता चलता है।

12

जिस उद्देश्य को लेकर राममोहन इंग्लैंड आए थे, उसे उन्होंने बड़ी सफलता से प्राप्त कर लिया। अकबर द्वितीय को तीन लाख की सालाना पेंशन मंजूर हो गई।

लेकिन बेथी के सतीप्रथा प्रकरण का क्या हुआ, जिसके लिए पूरा ब्राह्मण समाज पीछे पड़ा था? जिनके उकसाने पर राममोहन के ख़िलाफ़ गली-गली में आंदोलन खड़े हो गए थे। और उनके बारे में कहते फिरते थे कि 'बेटे का कोई कुल खानदान तो है नहीं, लेकिन खुद को बड़े खानदान का बताता फिरता है। बेटा ऊं तत्-सत् बोलकर स्कूल खोलता है।'

राममोहन एक के बाद एक तर्क देने लगे। वे तर्क नहीं बल्कि धारदार अस्त्र थे। बेथी तो खड़े भी नहीं हो पाए। राममोहन तो प्रतिवादी पक्ष से थे। उन्होंने वकील को तो सिर्फ कागज-पत्र के लिए साथ लिया था। वहां इन पोंगापंथियों की बात सुननेवाला कोई नहीं था। आदमी अब दूसरे जमाने में पहुंच चुका है। उसने अब नई सुबह की शंखध्वनि सुन ली है। राममोहन के स्वर में कठोर गर्जन था। पुरातनपंथियों की अपील खारिज हो गई।

राममोहन को पता था कि 1833 में ईस्टइंडिया कंपनी का शासन काल बढ़ा दिया जाएगा। तब कानूनों में भी रद्दोबदल किया जाएगा। संस्कारों संबंधी कार्य जारी भी रह सकते हैं, और नहीं भी। अंग्रेजी हुकूमत के सामने भारतीय समाज के संपूर्ण चेहरे को दिखाने की उन्होंने ठान ली। हाउस आफ कामन्स की सेलेक्ट कमेटी के सामने राममोहन को वक्तव्य देने के लिए आमंत्रित किया गया। राममोहन यही तो चाहते थे। उनके बीच में राममोहन ने जो वक्तव्य दिया, उसमें उनका देशप्रेम फूट पड़ा था। वहां भी राममोहन की बुद्धि और विद्वत्ता का चमत्कार दिखाई पड़ा था। राममोहन ने किन-किन विषयों पर जवाब दिया था, उसका जिक्र यहां प्रासंगिक है।

पहला, राममोहन ने भारत की राजस्व प्रथा से संबंधी नियम कानून पर अपने विचार व्यक्त किए। जनता की स्वतंत्रता, खजाने की कमी और किसान तथा जनसाधारण की उन्नति से संबंधित विचार व्यक्त किए। दूसरा, राममोहन ने विचारपद्धति के संबंध में अपने विचार व्यक्त किए। उन्होंने यहां की विचारपद्धति की एड़ी से चोटी तक व्याख्या करके असली समस्या का उद्घाटन कर दिया। इसके समाधान का तरीका भी उन्होंने बता दिया। तीसरा, उन्होंने भारत में यूरोपीय लोगों के रहन-सहन पर विवेचना सम्मत जवाब दिए। चौथा, राममोहन ने भारत में जनता की स्थिति पर विस्तार से प्रकाश डाला।

वहां राममोहन से जो सवाल किए गए और उनके उन्होंने जो जवाब दिए वे इतने ज्यादा लंबे हैं कि उनका यहां जिक्र करना संभव नहीं है। लेकिन पूरे का निचोड़ देखें तो उसमें राममोहन का देश प्रेम, यहां के प्रति उनका लगाव तथा गरीब और दुखियों के प्रति उनके मन में दर्द दिखाई देगा।

स्वेच्छाकारी शासन के प्रति राममोहन के जवाब में एक तीव्र घृणा थी। स्वेच्छाकारी शासन, शिक्षा के प्रसार तथा ज्ञान की उन्नति में बाधा खड़ी करके देश को बर्बरता की तरफ ठेल देता है। राममोहन ने बताया कि जिन देशों में ज्ञान की चर्चा जितनी ज्यादा होती है उन देशों में उतना ही अमनचैन है।

और किसानों के संबंध में, हम देखते हैं कि राममोहन के बाद बंकिमचंद्र, रवींद्रनाथ और दूसरे भी कई लोगों ने बंगाल के किसानों की दुर्दशा की बात उठाई थी, लेकिन 'जमींदारी प्रथा' के दोषों पर सबसे पहले राममोहन ने ही उंगली उठाई थी। उन्होंने अपने जवाब में किसानों की दुर्दशा सुनाते हुए जमींदार का शोषक चेहरा उद्‌घाटित किया। उन्होंने दिखाया कि जमींदारों के कारण ही किसानों की दुर्दशा दिन पर दिन बढ़ती जा रही है। जमींदारों का स्वार्थ किसानों का सर्वनाश कर रहा है। और सरकारी अमलों की बेईमानी के चलते किसान मौत के कगार पर है। जबकि जमींदार खुशहाल हैं और उनका खजाना भरा हुआ है। सरकार जमींदारों का ही समर्थन करती है। परिणामस्वरूप किसानों का सर्वनाश हो रहा है। अगर किसी साल फसल अच्छी हो जाती है, तो उस साल उसकी कीमत कम हो जाती है। परिणामस्वरूप किसान अपनी सारी फसल बेचकर जमींदार का कर्जा पटाते हैं और जमींदार अपना भंडार भर लेता है। फिर किसान उपवास करते हैं और नए सिरे से फसल उगाने के लिए घर में बीज का धान भी नहीं रह जाता।

राममोहन खुद भी जमींदार थे। लेकिन उन्होंने सिर्फ जमींदारी प्रथा की बुराइयों पर ही प्रकाश डाला। उन्होंने यह नहीं कहा कि जमींदारी प्रथा समाप्त कर दी जाए। बाद में रवींद्रनाथ ने भी दिखाया था कि किस प्रकार जमींदारी प्रथा ने पूरे बंगाल को जकड़ रखा

है और स्थिति काफी कठिन हो गई है। जमींदार बड़ी मछलियों की तरह हैं, छोटी मछलियों को देखते ही निगल जाते हैं। यही बात बंकिमचंद्र ने भी कही थी। राममोहन से चलकर रवींद्रनाथ तक संस्कारों का मार्ग थोड़ा प्रशस्त हुआ था।

और भारत में अंग्रेजों का कानून कैसा था? काफी दिनों के बाद यहां के लोगों ने किसी कानून को लेकर उन्हें धन्यवाद ज्ञापित किया था। जब सेलेक्ट कमेटी ने राममोहन से अंग्रेजी व्यवस्था और उसकी कमियों के संबंध में पूछा तो राममोहन ने उनकी कमियों पर प्रकाश डालते हुए उनके सुधार सुझा दिए। राममोहन ने कहा कि अंग्रेज शासक भारतीय नहीं है। वे भला वहां के बारे में क्या न्याय करेंगे? दूसरी तरफ भारत के लोग तो काफी समय से पराधीन और उपेक्षित रहे हैं। वे उनके ऊपर किसी तरह का भरोसा ही नहीं कर पाते। हालांकि वे यूरोपीय न्यायकर्ता और भारत के प्रति श्रद्धा रखने वाला शासक चाहते हैं। इन्हीं दो चीजों के संयोग से भारतीय व्यवस्था को मजबूत और सुंदर बनाया जा सकता है।

इससे क्या लगता है कि राममोहन अंग्रेजों की चापलूसी कर रहे थे? कुछ लोगों ने ऐसा ही सोचा था। दरअसल जिस यूरोपीय ज्ञानविज्ञान, समाज संस्कार संबंधी आंदोलनों और आदर्शों की ख्वाहिश भारतवासी करते थे, वही राममोहन की भी ख्वाहिश थी। लेकिन अंग्रेज भारतीयों की इस इच्छा को पूरा नहीं कर पाए। जिसका नतीजा यह हुआ कि हमारे देश में एक समय ऐसा आया कि सभ्यता का संकट छा गया।

13

इंग्लैंड में राममोहन ने जिस तरह मानवतावाद की जय घोषणा की

उससे वहां के देशवासियों के मन पर काफी गहरा असर पड़ा। जैसे संसद में खड़ा होकर नए भारत की नई शासन व्यवस्था के बारे में कोई बोल रहा हो। वहां राममोहन गवर्नर जनरल होंगे, न्यायधीश कोई मुसलमान होगा और हिंदुओं में से कोई राजस्व विभाग का सचिव चुना जाएगा। पुलिस विभाग का भार किसी एंग्लो इंडियन को सौंपा जाएगा। अर्थात भारत की शासनव्यवस्था में सभी संप्रदायों के लोग शामिल किए जाएंगे। और राममोहन? वे तो न हिंदू हैं, न मुसलमान, न ईसाई। वे तो बिल्कुल निरपेक्ष हैं। उनके शासन संभालते ही भारत दिन ब दिन उन्नति के रास्ते पर बढ़ता चला जाएगा। इसके सत्तर-अस्सी साल बाद भूदेव मुखोपाध्याय ने जिस तरह से भारत के उज्ज्वल भविष्य का सपना देखा था, उसे भी लोगों ने सच नहीं माना था। लेकिन जिस तरह तल्लीन होकर हमारे राजनीतिक नायकों ने 'स्वप्न लब्ध भारतवर्ष का इतिहास' रचने में उत्साह दिखाया वह हम आज देख पाते हैं।

राममोहन का सपना और भी व्यापक था। मधुसूदन का सपना था कि वे इंग्लैंड जाएंगे। राममोहन के सपनों का देश था फ्रांस। जहां फ्रांस की जनता ने कानून को तोड़ दिया था। जिस फ्रांस में उन्होंने राशन की समस्या को देखा था। वे फ्रांसीसी दरबार में जाना चाहते थे। लेकिन फ्रांसीसी सरकार तो खार खाए बैठी थी। वह नहीं चाहती थी कि राममोहन उसके देश में आएं।

राममोहन कुछ दिन चुप लगाए बैठे रहे। लेकिन जब वहां बाहर के लोगों के आगमन पर प्रतिबंध लगा दिया गया तो उसका विरोध करते हुए उन्होंने घोषणा की कि मनुष्य-मनुष्य के बीच कोई भेद नहीं होना चाहिए। वे अचानक जाग उठे थे। रूसो और वोल्तेयर के देश में प्रतिबंध? इस देश में तो इतने समझदार लोग रहते हैं।

समानता, मैत्री और स्वाधीनता की घोषणा सबसे पहले तो फ्रांस ने ही की थी। आश्चर्य है कि आज उस देश में ऐसी संकीर्णता पैदा हो गई। उन्होंने प्रार्थना करते हुए एक आवेदन भेजा और फ्रांसीसी विदेश मंत्री से कहा कि वे पिछले बारह सालों से फ्रांस भ्रमण की इच्छा अपने मन में पाले हुए हैं। उन्हें सांस्कृतिक रूप से उन्नत और स्वाधीन, लालित्य प्रधान विचारों वाले फ्रांस को देखने का बड़ा मन है। बड़ी मुश्किल से लंदन गया था, लेकिन धार्मिक एवं रास्ता संबंधी दिक्कतों के चलते फ्रांस नहीं जा सका था। यह किस प्रकार संभव हो सकेगा? एशिया में इस तरह का कोई कानूनी प्रतिबंध नहीं है। हां, चीन में यह प्रथा चलती है, क्योंकि वहां के लोगों को दूसरे देश के लोगों से ईर्ष्या होती है। यह बात सभी को मालूम है कि केवल धर्म के अनुसार ही नहीं, निरपेक्ष ज्ञान विज्ञान की साधना भी जिस ढंग से मनुष्य को एक ही रास्ते पर लिए जाती है, उससे सिद्ध होता है कि सभी मनुष्य एक ही परिवार के हैं। इसी परिवार की विभिन्न शाखाएं अलग-अलग देशों में बिखरी हुई हैं, इतना ही नहीं आदिवासी भी उसी परिवार में शामिल हैं। इसलिए एक देश के आदमी को दूसरे देश में भ्रमण की आज्ञा मिलनी चाहिए। इस तरह आपसी विचार विनिमय के द्वारा कई समस्याओं का हल भी निकल आता है। इससे दोनों ही देश उपकृत होते हैं, युद्ध के समय अवश्य इस व्यवस्था में परिवर्तन लाया जा सकता है। और युद्ध तो एक देश के स्वार्थ के चलते शुरू होता है, इसलिए उसे भूल समझा जाना चाहिए।

आज जबकि यूरोप शांत बैठा है, इंग्लैंड के साथ फ्रांस का कोई बैर नहीं है, तब ऐसा आचरण अभद्र और विश्वास की कमी का परिचय देता है।

अगर किसी राजनैतिक कारण से यह निषेधाज्ञा लगाई जाती है तब भी मैं कहूंगा कि यह गलत है, इसकी कोई जरूरत नहीं है। उसके लिए दोनों देशों के लोग आपस में बैठकर, वोटों के माध्यम से समस्या का समाधान निकाल सकते हैं। इस बैठक में सभापति का चुनाव बदल-बदलकर किया जा सकता है, कभी इस देश का, कभी उस देश का। इतना ही नहीं हर साल बैठकों का स्थान भी बदलते रहना चाहिए। फ्रांस और इंग्लैंड में डोवर और कयाले इसके लिए उपयुक्त स्थान हो सकते हैं।

इस तरह की बैठकों के माध्यम से दोनों देशों की राजनैतिक, व्यापारिक हर तरह के विवादों का हल निकाला जा सकता है। मित्रता ही सही रास्ता है। बैठकों के माध्यम से ही दोस्ती के रास्ते तलाश किए जा सकते हैं।

राममोहन के इस वक्तव्य में विश्व शांति की दलील और राष्ट्रसंघ के गठन की परिकल्पना थी, मानवधर्म का निचोड़ था। इस पत्र में विश्ववाद की गूंज थी। ईर्ष्या, द्वेष, सब कुछ भूलकर हर मनुष्य इस परिवार में शामिल है, हमने यह उदार विचार राममोहन से ही ग्रहण किया है। रवींद्रनाथ राममोहन के ही रास्ते पर आगे बढ़े थे। विश्वभारती में उन्होंने पूरी दुनिया को एक करने की कोशिश की थी। अब और क्या कहना बाकी था। फ्रांस के राजा लुई फिलिप ने राममोहन के विचारों का सम्मान करते हुए उन्हें फ्रांस आने की अनुमति दे दी।

14

फ्रांस की जनता ने राममोहन के प्रति काफी सम्मान व्यक्त किया। 1828 में ही 'सोसिएत आसियातिक' ने राममोहन को एसोसिएट

करेस्पांडेंट के ख़िताब से नवाजा। इस अवसर पर सिमांदी नामक एक विद्वान ने राममोहन के बारे में लिखा था कि राममोहन संस्कारों से ऊपर उठ चुके व्यक्ति हैं, वे एक सत्यस्वरूप ईश्वर के उपासक हैं और नीति तथा धर्मगत एकता को पुनर्स्थापित करने के प्रति सचेष्ट हैं। संभवतः फ्रांसीसी लोगों को भी राममोहन की विद्वता की भरपूर जानकारी थी। एक बार उज्यान वुर्नूफ ने राममोहन की रचनाओं की भरपूर प्रशंसा की थी। उन्होंने बल देकर कहा था कि राममोहन द्वारा किया गया वेदांत का अनुवाद सर्वश्रेष्ठ है।

वहां के राजा फिलिप ने राममोहन को भोज पर आमंत्रित किया। यहां राजा राममोहन राय को भरपूर सम्मान मिला। उनका मन प्रसन्नता से भर गया।

वे वहां से लंदन चले गए। फ्रांस से लौटने के बाद राममोहन की आर्थिक स्थिति कुछ तंग हो गई। राममोहन के जो पैसे भारत के जिन दो बैंकों से विदेश आने थे, वे बैंक ही बंद हो गए। ईस्ट इंडिया कंपनी के पास राममोहन का पैसा उधार था, वह भी उन्हें नहीं मिल सका। ऐसी स्थिति को देखते हुए राममोहन के सम्मान की रक्षा करते हुए इंग्लैंड में हेयर परिवार ने उन्हें आर्थिक सहयोग देना चाहा, लेकिन उन्होंने नहीं लिया। राममोहन की दुश्चिंता बढ़ती गई। टूटे पांव का दर्द भी अभी बना हुआ था। राममोहन के दोस्तों ने आबोहवा बदलने के लिए उन्हें लंदन से ब्रिस्टल चले जाने का परामर्श दिया। राममोहन अपने जिगरी दोस्त रवेरेंड डाक्टर कारपेंटर के आमंत्रण पर ब्रिस्टल आ गए।

यहां आने के बाद राममोहन की आर्थिक परेशानी दूर हो गई। मिस किडिल नाम की एक महिला ने स्टेपल्टन ग्रोव का अपना बड़ा-सा मकान राममोहन को रहने के लिए दे दिया। मिस किडिल

राममोहन का आदर करती थी। वह अपने बेटे को राममोहन के पास रखकर उसे पढ़ाना-लिखाना चाहती थी। एक मिस कैसल नामक महिला भी राममोहन की काफी अंतरंग थीं। राममोहन इनके साथ धर्म, राजनीति आदि विषयों पर चर्चा करते। डाक्टर कारपेंटर मिस किडिल के उपकार से काफी प्रसन्न थे। शांति भी लौट आई थी। किंतु मेहनत पड़ने से उनका स्वास्थ्य गिर गया था।

डा. लांट कारपेंटर याजक लिवेन आदि दोस्तों के साहचर्य से उनका स्वास्थ्य ठीक होने लगा, किंतु 19 सितंबर 1833 को वे अचानक बीमार पड़ गए। बुखार और तेज सिर दर्द के कारण राममोहन कमजोर होते चले गए। डेविड हेयर की बहन उनकी सेवा करने लगी। लेकिन राममोहन फिर स्वस्थ नहीं हो सके। डाक्टरों को अब और भरोसा नहीं रह गया।

डा. ईस्टलिन ने राममोहन का उपचार किया। राममोहन ने अपने आखिरी कुछ घंटों में लिखा था, "वह शुक्ल पक्ष की रात थी, मिस्टर हेयर, मिस किडिल और मैं जंगले से बाहर ताक रहे थे, वहां गांव की आधी रात विस्तृत फलक पर पसरी पड़ी थी। दूसरी तरफ एक कमरे के भीतर अत्यंत साधारण एक मनुष्य मृत्यु का रास्ता निहार रहा था। उस रात को मैं कभी नहीं भूल पाऊंगा।"

27 सितंबर 1833 की रात के ढाई बजे मि. हेयर ने अपने घर लौट कर बताया कि सब कुछ समाप्त हो गया। 2 बजकर 25 मिनट पर उन्होंने अपनी अंतिम सांस ली।

18 अक्तूबर 1833 को राममोहन का शरीर स्टेपल्टन ग्रोव में पंचत्व में विलीन हो गया। लंदन में राजा के जो दोस्त थे सिर्फ वही उस अवसर पर सम्मिलित हो सके थे। लंदन से हेयर सपरिवार पधारे थे। मिस कैसल के अभिभावक और परिवार के लोग, राजा

के आखिरी वक्त में वही लोग उनके साथ थे। राजा के पालित पुत्र राजाराम, ब्राह्मण नौकर, डाक्टर लोग, डा. जेरार्ड, जान फास्टर, कारपेंटर और उनके पिता इसमें सम्मिलित हुए थे।

सभी शोक संतप्त थे। इस प्रकार एक समाधि के ऊपर खड़ा होकर बोलने की शक्ति किसी में भी न थी। दस साल बाद जब द्वारिकानाथ लंदन गए तब उनका शरीर 'आरनोस' हुआ। एक स्थान पर समाधिस्थ किया गया। उन्होंने वहां पर एक सुंदर मंदिर का निर्माण कराया।

उसी मंदिर में भारत पथिक की यात्रा का अवसान हुआ था और एक नए काल की यात्रा शुरू हुई थी।

15

राममोहन की विदेशयात्रा सफल रही।

वे फिर लौट कर भारत नहीं आए। किंतु भारत में उनके दोस्तों की एक मंडली तैयार हो गई थी। यहां रहकर राममोहन ने उनकी दोस्ती से काफी प्यार पाया था। मंडली ने राममोहन के रास्ते पर चलकर देश की सेवा का व्रत लिया। उस मंडली के नेता थे 'डिरोजियो, जिन्होंने अकादेमिक एसोसिएशन' की स्थापना की। एक अर्थ में वे सब विद्रोही ही थे। उनके कार्य व्यापार में कुछ-कुछ अस्थिरता भी दिखाई देती थी। लेकिन उनमें अपने देश के प्रति सच्चा प्यार था। डिरोजियों ने कहा था, 'हे मेरे प्यारे देश, तुम्हारे ललाट पर भूषित प्रकाश पुंज।' राममोहन का देश प्रेम भी इसी भावना से दीप्त था। 1838 में 'साधारण ज्ञानोपार्जिका सभा' की स्थापना द्वारा राममोहन के आदर्श को ही स्थापित करने की कोशिश की

गई थी। इसी तरह वहां के पढ़े-लिखे बंगालियों ने राममोहन के आदर्श पर चलकर और भी कई संस्थाओं का गठन किया।

रवींद्रनाथ ने कहा था, राममोहन के युग में भारत में कालरात्रि उतर आई थी। शास्त्र की समझ न होने से लोग 'ऊँ तटतट तो तय तो तय' बोलकर मंत्र पाठ करते थे। लोग भय आंतक के भयानक साए में जी रहे थे। लोग डर के मारे दरवाजा तक नहीं खोलते थे, क्योंकि उन्हें डराया जाता था कि दरवाजा खोलते ही एक काली जटा वाली देवी भयंकर रूप धारण कर प्रकट हो जाएगी। मनुष्य और मनुष्य के बीच भेदभाव बनाए रखने के लिए उन्हें अलग-अलग खानों में बांट दिया गया था।

राममोहन ने अभयमंत्र का उच्चारण किया था। प्रतिबंधों को तोड़ फेंकने की कोशिश की थी। मनुष्य की मूढ़ता रूपी जंजीर को तोड़कर फेंक देने की कोशिश की। मनुष्य के अधिकारों को उन्होंने बढ़ा दिया था। भारत को पूरी दुनिया से मिला देने के लिए एक सेतु का निर्माण किया। वही हमारा भी उत्तराधिकार है।

हमने उसमें से कितने का पालन किया है? यह सवाल हमें कितना उद्विग्न करता है? हम मनुष्य के लिए अपने ज्ञान-विज्ञान का कितना इस्तेमाल कर पाते हैं। 'हमारी अज्ञानता, हमारी कमजोरी ही विरोधियों की ताकत है। राममोहन ने जिस ताकत के साथ विरोधियों से संघर्ष किया था, क्या हमने यह संकल्प लिया है कि हम राममोहन के उस संघर्ष को तमाम दुःख, कष्ट सहते हुए भी आगे बढ़ाएंगे?'

डी.पी. ग्राफिक्स, उत्तम नगर, नई दिल्ली-110059 द्वारा लेजर सेट होकर शिवम् ऑफसेट प्रेस, नारायणा, नई दिल्ली-110028 द्वारा मुद्रित।